ज्ञानपीठ लोकोदय ग्रन्थमाला
सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन

प्रकाशक
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी

(कन्या) चित्रा और (जामाता) रामको
उनके विवाह (८ जून १९५४) की
पाँचवीं वर्षगाँठपर—

वक्तव्य

प्रस्तुत सग्रह सन् ५४-५६मे लिखे मेरे कुछ फीचरो और एकाकियोका है। इनमेसे अधिकतर इलाहाबाद-लखनऊ आकाशवाणीसे प्रसारित हो चुके है। 'महाभिनिष्क्रमण' तो उत्तर-दक्षिणकी सभी भारतीय भाषाओमे अनूदित होकर आकाशवाणीके तेरह केन्द्रोसे बुद्धकी २५००वी जयन्तीपर प्रसारित हुआ था। आकाशवाणीके प्रति कृतज्ञ, मै अब इन्हे एकत्र प्रकाशित कर रहा हूँ।

सारे फीचर और एकाकी ऐतिहासिक है। कुछके कथानक प्राचीन भारतसे सम्बन्धित है, कुछके मध्यकालीन भारतसे। एक—जोहान वोल्फगाग गेटे—मे प्रसिद्ध जर्मन कविका आशिक जीवन प्रतिविम्बित है। भारतीय प्रेरणाका प्रयोग उसमे स्पष्ट है। 'गणतन्त्रगाथा'के आठवे दृश्यका श्लोक कालविरुद्ध [कुमारगुप्त प्रथमके कालसे, यद्यपि वह कुमारगुप्त द्वितीयके कालका है, वत्सभट्टीका बनाया] होते हुए भी प्रभावके लिए दिया गया है। इसी प्रकार कई वर्ष पूर्व मृत शिलरको भी नेपोलियन द्वारा वाइमारपर आक्रमणका समकालीन रखा गया है।

फीचरोका पूर्वोत्तर क्रम युगपरक नही है। आकस्मिक विविधता रुचिकर होती है, इसीसे इन्हे यथास्थान रखा गया है। आशा करता हूँ, पाठको और दर्शकोका इनसे कुछ मनोरजन होगा।

काशी,
१-१-१९५९

—भगवतशरण उपाध्याय
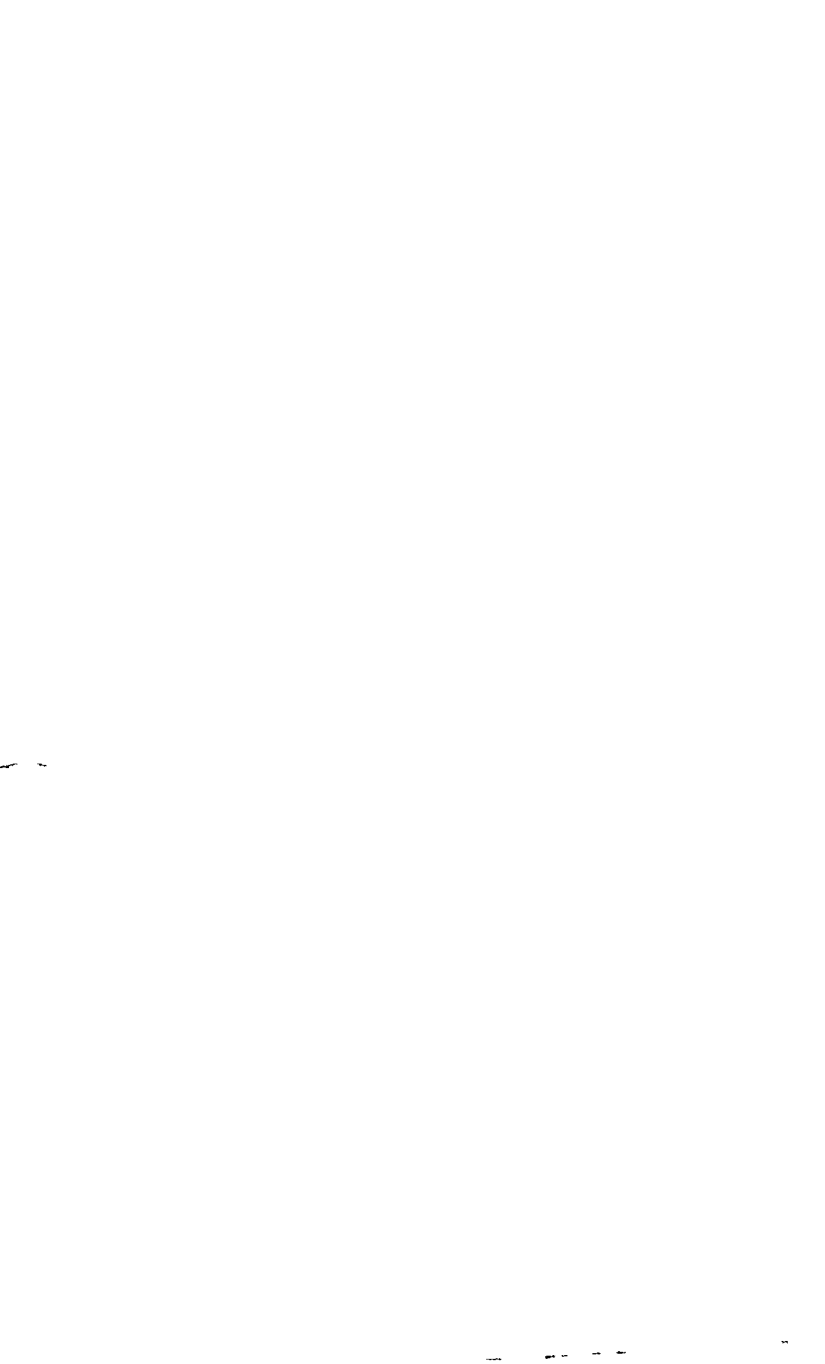
• विषय-क्रम •

सीकरीकी दीवारें

पहला दृश्य

[ग्रीष्मकी सन्ध्याकी हल्की लालिमा। मुसम्मनबुर्जकी छायामें महले-खासका शीशमहल। उसके नीचे सहनमे फैला अगूरी बाग, सीकरसिक्त अगूरकी बेलें, उनके गुच्छे। मदभरी साँझमे अकुलाया, घटाकी भाँति जहाँनाराके आकाशको घेरे उसका अलसाया अल्हड मदिर यौवन। तपी-सी बैठी जहाँनारा, हल्के-हल्के चँवर झलती बाँदियाँ, सामने सकीना।]

सकीना—फिर, शाहज़ादी ?

जहाँनारा—फिर, सकीना, मैंने चिलमन उठा दिया। पर्दा हट जानेसे साँझकी धूप मेरे मुँहपर पडी। राजा ठिठका। उसका घोडा, जैसे अलफ ले रहा हो, हल्केसे आगेको उठा। पर, सकीना, वह अलफ न था।

सकीना—नही, शाहजादी, वह अलफ न था।

जहाँनारा—अलफ न था वह, सकीना। राजाने घोडेकी चाल जान-बूझकर सम्हाली थी। वही अनेक वार उसने मुझे खडी-बैठी देखा होगा, मेरा अन्दाज है।

सकीना—सही, शाहज़ादी, दीवाने-आमसे गुज़रनेवाले राजा उधरसे ही जाते है, मीनारे-अव्वलको दस्तक देते।

जहाँनारा—घोडा रुका, सकीना। पीछेके सवार भी कुछ रुके, सहमे-सहमे। हवा जैसे थम गई थी, साँझ अरमानोसे बोझिल थी। [लम्बी साँस लेती है] आँखें चार हुई सकीना। डूबते सूरजकी सुनहरी किरनें अब भी मेरे मुँहपर पड रही थी। पर मैं उसकी गरमीका गुमान भी न कर सकी। मेरे सामने ठिठका हुआ वह

घुडसवार था, पीछे उसके बाँके जवान थे। मैने देखा, सकीना, उसका सीना पहले जैसे धीरे-धीरे तना फिर जैसे बैठ गया। एक बार फिर उसने अपनी बडी-बडी आँखे मुझपर डाली और वह आगे बढा। उसके हल्के वासन्ती साफेकी कलँगी छिप गई, 'बख्त हवा' की जालीके पीछे।

सकीना—चला गया फिर राजा ?

जहाँनारा—एकना खतरेसे खाली न था, सकीना। राजा चला गया, लहराती कलँगीके तार चमकाता, अपने बाँके जवानोको लिए। जवान, जो उस बहादुर कौमके नाज़ है, हमारी सल्तनतके पाये। [आह भरकर] लहर उठा दी उसने, सकीना, उस राजाने। तातार अव्वल थोडी दूरपर खडा था, परकोटेके नीचे देखता। मैने पूछा—'कौन थे घुडसवार, खान ?'—बोला, 'बूँदीका राजकुमार छत्रसाल।' [साँस खीचकर] क्या सूरत थी, सकीना, क्या रूप था, क्या तेज, क्या शान ? मिस्रके मामलूक देखे है, लडकी, फरगनाके बेग, दमिश्कके तुर्क, गोरके पठान, पर रूपका वह राज तो कही न देखा, जैसे खूबसूरतीको साँचेमे खडा ढाल दिया हो। वह तना सीना, वह भरे बाजू, वह लम्बी झुकी नाक, बडी-बडी बेखौफ आँखे—क्या कहाँ तक बताऊँ, सकीना, वह बेदाग नक्शा ! तपे सोनेका वह रग आँखोसे उतरता ही नही।

—सही, शाहज़ादी, बूँदीका राजा तो गजबका खूबसूरत है। अच्छा, फिर उसे कब देखा आपने ?

—फिर उस रोज़ जब दीवाने-आमके सहनमे उडिया हाथीने भाईजान दारापर हमला किया था। तू तो मेरे पास ही थी, सकीना ! [कुछ सोचकर] नही, तू नही थी, जुलेखा थी मेरे साथ। हाँ, तो हाथी भडका, दाराके घोडेकी ओर बढा। भीड छँटती गई। राजा और अमीर तितर-बितर हो गये। पर बूँदीके उस बाँकने

तलवार खीच ली। हाथी बढा। सांसे थम गई। पल भरमे जाने क्या हो जाता ! दरबारमे चीख पुकार मची थी। बादशाह तख्तसे उतर चुके थे, मेरा एक पैर पर्देके बाहर हो चुका था कि उडिया हाथीका रह-रह कर गुजलक भरता सूंड तलवारके एक झटकेसे केलेके खम्भ-सा कट गया। तभी पसीनेसे लथपथ कुँवरको देखा था, सकीना, दारा और कुँवरके वालिद राजाने जब एक साथ उसे सीनेसे लगा लिया था, जब दोनोसे मूँठ भर ऊपर उसका सिर काले घुंघराले बालोसे लहरा रहा था, जब उसके चौडे ललाटपर धूपने पसीनेके मोती बिखेर दिये थे, उसकी पगडीके फेटे बाये कन्धेसे उलझ गये थे।

सकीना—काश कि मै भी वह नज़ारा अपनी आँखो देख पाती, शाहजादी!

जहाँनारा—फिर आज देखा, लडकी। आज बापने उसे गद्दी दी। बूँदीका राज उसके बूढे बापने उसे आज सौप दिया। देख तो, सकीना, इस कौममे ताजके लिए जग नही होते। जिन्दा बाप अपने आप अपनी गद्दी बेटेको सौप देता है, दूसरे बेटे उसे कुरान शरीफके कलामकी तरह मजूर करते है।

सकीना—नही, शाहज़ादी, उस कौममे इस तरहके झगडे नही होते। कम सुने गये है। अच्छा, फिर ?

जहाँनारा—फिर बादशाह आजमने उसे सरोपा बख्शा, खिलअत दी। मै पर्देके पीछे थी, तख्तके पीछे, बाये बाजू, जब कुँअर नजरका थाल लिये बादशाहके सामने झुका। मेरे पाससे ही वह गुजरा था, सकीना। मेरे इतना पास आ गया था वह कि लगा, अगर हाथ बढा दूं तो उसे छू लूंगी। इतने पाससे मैने उसे कभी न देखा था। तभी उसके जिस्मका जादू मुझे बेहाल कर चला। मै उठ पडी। रोशनाराने मुझे उठते देखा। माथेपर छलकी पसीनेकी बूँदें भी शायद उसने देखी। पर मै रुकी नही, रुक न सकी, सकीना।

[जरा रुककर] अच्छा, अब तू चली जा, सकीना। वक्त हो गया है। दरबारे-खास उठ गया होगा। राजा उधरसे अकेला निकलेगा और जब तक दरबारे-खासके बाजूसे घूम दरबारे-आमके सहनमें न निकल जाय, वह अकेला ही होगा। फिर मौका न मिलेगा। सब याद है न ?

सकीना—सब याद है शाहज़ादी, चली।

[सकीनाका प्रस्थान]

जहांनारा—देख, नरगिस, देखती है उन बेलोंको ? जब फव्वारोंकी बूँदे हरी पत्तियोंपर पड़ती है तब उनके सिरे झुक जाते है, जैसे उन बूँदोको भी वे न उठा पाती हो। बूँदे अगूरके गुच्छोसे होकर नीचे गिर जाती है जैसे सुन्दर अण्डाकार मुँहसे उतरते ठुड्डीसे टपकते आँसूके कन। और पत्तियोपर ये बूँदे ठीक शबनम-सी लगती है।

नरगिस—हाँ, शाहजादी, इनपर शामको ही शबनम बिखर पड़ती है। नये आलमका बोझ भारी होता है, जैसे नई मुहब्बतका।

जहांनारा—'नये आलमका बोझ भारी होता है, जैसे नई मुहब्बतका'—सही, नरगिस, उस बोझका उठाना कुछ आसान नही, क्यो अमीना ?

अमीना—सही, हुज़ूर, नरगिस झूठ नही बोलती। बीते सालोंकी मुहब्बतका बोझ यह अभी तक ढोये जा रही है। रह-रहकर उसकी याद मँडराती, इसके चेहरेपर उतर आती है।

जहांनारा
नरगिस } —[एक साथ]—क्या ? क्या ?

अमीना—हाँ, देखिए तो, शाहजादी, इसके गाल कानो तक लाल हो गये। कुछ झूठ कह रही हूँ ?

जहांनारा—सो तो सही, अमीना, गाल तो सच इसके कानो तक लाल हो गये। पर बात क्या है, आखिर सुनूँ तो।

नरगिस—बात खाक नहीं है, हुजूर। आप भला क्यों इसे उकसाये जा रही है ? अपना गम गलत करनेके लिए मुझे क्यों भाडमें झोंके दे रही है ?

जहांनारा—मेरा गम ? मैं अपना गम गलत कर रही हूँ, हां।

[चुटकी काटनेसे अमीनाका चीखना]

अमीना—देखिए, देखिए, शाहज़ादी, मुई चुटकी काट रही है, जिससे भेदकी बात न उगल दूँ।

जहांनारा—नरगिस, ऐसा न कर। कहने दे उसे। हां, अमीना, रह-रह कर किसकी याद मँडराती, इसके चेहरेपर उतर आती है ?

अमीना—अरे उसी सलोने तातारकी जो कभी खोजेके नामसे हरममें घुस आया था, जिसे नरगिस खाला कहा करती थी।

[तीनोंका एक साथ ठहाका मारकर हँसना]

नरगिस—अपनी भूल गई अमीना, शीशमहलके पिछवाडेकी बात, जब मीना बाजार और मच्छी भवनके कोने जैसे काना-फूसी किया करते थे, जब दीवाना बनजारा सँपेरा बनकर आता था, जब आबरवांके पीछे मछली तडप उठती थी।

जहांनारा—अरे, बस! बस! नरगिस, क्या बकती है ? देख अमीनाके हाथसे चँवर छूट चला। नरगिस, सम्हाल उसे, सहारा दे।

[तीनोंका फिर ठठाकर हँसना]

अमीना—अच्छा! अच्छा! शाहजादी। पर सहारेकी जरूरत मुझे नहीं उसे होगी जिसका दिल 'बफ्त हवा' की जालीके पीछे बासन्ती साफेके सफेद तुर्रेकी तरह हिल रहा है।

जहांनारा—[दर्दभरी आवाजमें]-सही, अमीना, सहारेकी जरूरत उसीको है।

नरगिस—छि अमीना!

अमीना—माफी, शाहजादी। गलती हुई। घुटने टेकती हूँ— [घुटने टेकती है]।

जहाँनारा—कोई बात नही, अमीना। तुमने बेजा नही कहा। मजाकमे कहा। पर बात सही है। [साँस खींचकर] है मुझे जरूरत सहारेकी। मेरा सहारा ' मगर वह गरीब है जो दुनियाके सामने कभी मेरा न हो सकेगा। बेशक उसका राज हरमके भीतर उस धडकते दिलकी चहारदीवारीमे होगा, जहाँसे मुगलिया खानदानके सख्त कायदे भी उसे नही निकाल सकेगे। काश मै उन कायदोको बदल सकती ! काश अब्बा उस नीतिको बदलकर उसे अपना लेते, जिससे अकबर आजमने जोधाबाईको पाया था ! [लम्बी दर्दभरी साँस लेती है] खैर न सही। पर आज कोई देखे, बूँदीकी रेतका पौधा शाही हरमके अगूरी बागमे लग गया है। उसकी जडें इस जमीनमे गहरी, बहुत गहरी चली गई है, और उन्हे शीशमहलकी शाहजादी आँखोके पानीसे सीचती है, अपने किमखाबी दामनमे मिट्टी भर-भर ढकती है। [लम्बी दर्दभरी साँस] यह मेरा भेद है जो तैमूरिया खानदानके बेरहम काजी भी नही जान सकते, नही मिटा सकते।

[सकीनाका प्रवेश]

आह ! सकीना, आ गई तू। बोल, चेहरेकी हँसी देख रही हूँ। अल्लाह खुश है, उसे मजूर है।

सकीना—अल्लाह खुश है, शाहजादी, उसे मजूर है।

जहाँनारा—पर बोल, बोल तो।

सकीना—दरबार उठ गया था, शाहजादी, जब मै वहाँ पहुची। खानखाना राजाको कुछ सलाह दे रहे थे। दरवाजे बन्द हो रहे थे। फानूसोकी बत्तियोकी ओर हाथ लपके ही थे कि मै मीनारे-अव्वलके गहरे

सायेमे जा खडी हुई। जानती थी, खानखानाके जाते ही राजा दस्तक देने उधर मुडेगा। राजा मुडा।

जहाँनारा—फिर ?

सकीना—फिर, शाहजादी, राजा मुडा। मीनारको दस्तक देनेके लिए जैसे ही वह झुका, उसने मुझे देखा। कुछ ठिठका, उसके मुँहसे हल्के-से निकल पडा—'कही देखा है।' 'देखा है', मै बोली, 'परकोटेके पीछे, उसकी बगलमे जिसका नाम कोई नही ले सकता।' राजाकी आँखे चमकी। बोला—'परकोटेके पर्देके पीछे, हाँ। और हाँ, उसकी बगलमे जिसका नाम मेरे हियेका भेद है।'

जहाँनारा—फिर ? फिर ?

सकीना—फिर मैने कहा—'वक्त नही है ? बस इतना है कि इसे दे दूँ।' और मैने आपका मोतियोका हार उसकी ओर बढा दिया। पल भरमे दिलेर राजाके कन्धे झुक गये, शाहजादी। घुटने टेक उसने झुके सिरके ऊपर अपने हाथ उठा लिये। हार मैने उसकी खुली हथेलियोपर रख दिया। हारको गलेमे डालता राजा बोला—'कहना उस देवीसे, जो हार ले चुका हूँ उसे इस मुक्ताहारके बदले कैसे दूँ ? पर उसे हृदयपर रखे लेता हूँ जहाँसे इसे मौत भी अलग न कर सकेगी। कहना, 'गँवार राजपूतका कन-कन उस नामको टेर रहा है जो जबानपर नही लाया जा सकता।'

जहाँनारा—सकीना, तू सोना है ! अच्छा, फिर ?

सकीना—फिर राजा उठा। चला गया। उसके पैर बोझिल हो रहे थे, मन-मन भरके, जैसे उठते न हो। मैने उसे अँधेरेमे धीरे-धीरे गायब होते देखा। जैसे सूरज पहाडके पीछे छिप जाता है, राजा भी दीवारोके पीछे मुड गया। पर जैसे सूरजका तेज़ डूबकर भी नही खोता, राजाका तेज़ भी उस धुँधलेमे रोशन था।

जहाँनारा—राजा चला गया, सकीना, पर सीनेमे एक पीन लगा गया, जो मेरी तनहाइयोको भरेगा। चल, सकीना, उधर जमुनाके पार पच्छिममे दूर बूँदीकी राहमे राजाके घोडोके खुरोसे उठी धूलके बादल चमकते चाँदके नीचे देखे।

दूसरा दृश्य

[शिशिरका प्रभात। आगरेके किलेका शाही महल। जहाँनारा का समृद्ध कमरा, जिसे दुनियाके कलावन्तोने सजाया है। गंगा-जमुनी शैय्यापर मखमली भारी बिस्तर। तकियोके बीच पड़ी, करवट बदलती जहाँनारा। अमीना और नरगिस। द्वार के पास खडी सकीना।]

जहाँनारा—रात कितनी बडी हो गई जो काटे नही कटती।

सकीना—मुसीबतकी है, शाहजादी, पहाड हो जाती है। काटे नही कटती।

जहाँनारा—कबकी सोई हूँ, पर जैसे यह रात बीतेगी ही नही।

सकीना—नीद नही आई, शाहज़ादी ?

—नीद तो हर ले गया बियाबाँके पार बूँदीको, उसका राजा।

ना—उसकी नीद भी हराम हो गई है, शाहजादी। उसके दिलमे भी तडपन है, और थोडी नही, जो रातके सन्नाटेके सायेमे करवट बदल-बदल उठती है। उसकी रात भी जाडेकी है, शाहजादी, और यादभरी।

जहाँनारा—जाडेकी रात, फिर यादभरी। सही कहा, सकीना तूने। या खुदा, तूने रात क्यो बनाई ? रातका सन्नाटा तूने दर्दकी टीस और मुहब्बतकी तडपनके लिए क्यो चुना ? पर क्या रात, क्या दिन! यहाँ तो दोनो एक-से है, दोनोकी टीस और तडपन एक-सी है। [जरा रुककर] अच्छा देख, नरगिस, जरा खिड़कियोंके

काले पर्दे गिरा दे। अँधेरेमे गमका साया रहता है, और उसमे उसका बेदाग चेहरा साफ चमकता है। गिरा दे पर्दे, और छोड दे मुझे अकेली।

[तीनोका प्रस्थान]

[जरा रुककर] नही रुकनेकी, दिनकी दमक है न ? अमीना, उठा दे पर्दे।

[अमीनाका प्रवेश]

अमीना—अच्छा, शाहज़ादी।

जहाँनारा—और सकीना कहाँ गई ? बुला तो उसे जरा।

सकीना—[प्रवेशकर]—यह आई।

जहाँनारा—इधर आ। बैठ यहाँ, हाँ, जरा और पास। और देख, वह अपना गाना तो जरा सुना—वह दर्दभरी रागिनी।

[सकीना गाती है]

जहाँनारा—बन्द कर, सकीना ! इस रागिनीने तो जैसे और हूक उठा दी। कौन कहता है कि गानेसे गम गलत होता है ? यहाँ तो याद जैसे और रग-रगमे बिंध गई। जिस्ममे कही एक जगह तकलीफ हो तो इन्सान सम्हाले भी पर सारा जिस्म ही जो तीरोकी सेजपर पडा हो तो वह क्या करे ?

[घबडाई हुई नरगिसका प्रवेश]

नरगिस—गजब हो गया, शाहजादी !

सब एक साथ—क्या हुआ ?

नरगिस—गजब ! धर्मातके जंगमे हाजी जीत गया। शाहजादा शिकोह किलेकी बुर्जियोके नीचे है, सलामत, पर थके और बेजार।

जहाँनारा—और राजा ?

नरगिस—राजा सही सलामत है, बूँदीमे। जब राजपूत बे-अन्दाज गिर गये और शिप्राका पानी उन जवांमर्दोके खूनमे लाल हो गया तब महाराजा जसवन्तसिंहने राजाको कुमक लाने भेज दिया।

जहाँनारा
सकीना
अमीना
—शुक्र खुदाका!

जहाँनारा—परवरदिगार, तेरी रहमत बडी है। आज तूने मुझे डूबनेमे बचा लिया। अमीना, हुक्म भेज बूँदीकी राहमे कि राजा बजाय बागियोकी राह रोकनेके दरबारमे हाजिर हो।

अमीना—जो हुक्म!

[प्रस्थान]

जहाँनारा—वे जोधपुर लौट गये!

[अमीनाका प्रवेश]

अमीना—शाहजादी, बादशाह सलामतका हुक्म है—दरबार दिल्ली चले।

जहाँनारा—हूँ! खतरेके डरसे दरबार दिल्ली जा रहा है। पता नही क्या होगा। सल्तनत खतरेमें पड गई। दुनिया उसे हाजी कहती है। हाजी नही है वह। उसकी ताकत फरगनाके उजबक तुर्क जानते है, जिनके सामने भरे मैदान उसने शामकी नमाज पढी थी, दुश्मनोके बीच। उसके तेवर कौन सम्भालेगा, खुदा? कौन इस सल्तनतके अकेले अवलम्ब दाराकी रक्षा करेगा, परवरदिगार?

[सबका प्रस्थान]

तीसरा दृश्य

[दक्खिनकी ओरसे शत्रुकी सम्मिलित सेनाके आगरेकी ओर बढनेकी सूचना। शाहजहाँका दिल्लीसे आगरेको प्रस्थान। नेपथ्य मे ऊँट, हाथी, घोडे, पालकीके कहारोकी आवाज। पैदलोके पैरोकी चाप। सीकरीमे पडाव। सीकरीके महलोमे एकाएक साँझके समय कानोको बहरा कर देने वाली आवाजोकी गूँज। कारवाँसरायमे शाही अगरक्षक सेना ठहरी है। सामने खुले मैदानमे बूँदीके छत्रसालका डेरा है। खास महलके सायेमे ख्वाबगाहमे शाहजहाँ आराम कर रहा है। पास ही तुर्की बेगमके कमरेमे जहाँनारा और उसकी बाँदियाँ।]

सकीना—शाहजादी, राजा पहुँच गया है। उसके घुडसवार पहलेसे ही डेरा डाले पडे हैं। बूँदीका बहादुर रिसाला आगे बढ चुका है। राजाको हमारे यहाँ आनेकी खबर थी ही, रिसालेकी एक टुकडी लिये वह यहाँ आ पहुँचा।

जहाँनारा—तू मिल सकी राजासे, सकीना ?

सकीना—हाँ, शाहजादी। दरबारमे हाजिर होनेका हुक्म हुआ था, उसी हुक्मके साथ मै भी राजाके सामने हाजिर हुई। राजाने देखा, पहचाना। पुराना घाव जैसे खुल पडा। पर अपनेको सम्हाल कर वह खेमेके बाहर निकला, पूछा—'शाहजादीकी क्या आज्ञा है ?' 'ठीक समझा आपने। वहीसे आई हूँ।' मैने कहा, फिर पूछा—'क्या जोधाबाईके महलमे आज आधीरातको मिल सकेंगे ?' राजा बोला—'निश्चय।'

जहाँनारा—फिर, सकीना ?

सकीना—फिर मै चली आई, शाहजादी। दरबारका हुक्म जल्दी हाजिर

होनेका था। राजाको जल्दी थी पर पल भरके लिए जैसे उसे दुनियाका गुमान न रहा, दरबारका भी नही।

जहाँनारा—राजा कैसा लगता था, सकीना ?

सकीना—कुछ चिन्तित जान पड़े, शाहजादी। शक्ल अँधेरेमे कुछ साफ न दीख सकी। बाहर चाँदनी थी पर पेडके सायेमे बस उनकी फैली छाती और घुँघराले बाल देख सकी, गो कानके मोती अँधेरे मे भी रह-रहकर दमक उठते थे। राजाकी एक झलक खेमेकी रोशनीमे भी दीख गई थी, पर वहाँसे जल्द अँधेरेमे हट आना पडा था। रोशनीमे चेहरा कुछ उतरा मालूम पडा।

जहाँनारा—राजा चिन्तित है, सकीना। उसके सामने एक मुसीबत नही, कई है। सल्तनतके उखडते हुए पाये सम्हाले नही सम्हलते। फिर भीतरका दर्द बराबर बढता गया है। राजा, सच मानो, अपनी मुसीबतोमे तुम तनहा नही हो! [आह भरना]

सकीना—शाहजादी, अगर आज हम मुसीबतके सायेमे न मिलते तो मुबारकबाद देती। आज जो कही शाहजादाका सितारा बुलन्द होता!

जहाँनारा—आह, सकीना, आज दाराका सितारा जो कही बुलन्द होता!

सकीना—खुदाकी रहमत फलेगी, शाहजादी। जो इतना दिलेर, इतना इन्साफपसन्द है उसका बाल बाँका न होगा। हमारी हजार मिन्नतें उसके साथ है, हजार-हजार दुआएँ हमारे शाहजादेको उम्र और इकबाल बख्शेंगी।

जहाँनारा—तेरे मुँहमे घी-शक्कर, सकीना! तेरी जबान सही उतरे! पर मै जब आगेकी सोचती हूँ तब जैसे मेरे अरमानोकी दुनिया बिलख उठती है। पानीमे आग लग जाती है। कैसे समझाऊँ दिलको ?

सकीना—समझाओ, शाहजादी। तुम इस जमीनकी नही हो। तुममे फरिश्तोकी अक्ल और जवाँमर्दोकी हिम्मत है। तुम कही अपना

साहस न खो देना। बुजुर्ग बादशाह सलामतकी बस तुम्ही सहारा हो, दाराशिकोहकी तुम्ही आड हो, राजाकी तुम्ही साँस।

जहाँनारा—हिम्मत नही हारूँगी, सकीना। इस खानदानमे जब पैदा हुई हूँ तब इसके सुख-दुख दोनोको हाथ बढाकर लेती हूँ। हाँ, जानती हूँ कि अब्बाकी बुढौतीका सहारा मैं ही हूँ। भाईकी आड भी मैं ही हूँ, इस बहादुर राजाके दिलका भेद भी। या खुदा, मुझे ताकत दे कि मै तीनो जिम्मेदारियाँ निभा सकूँ। [**साँस भरकर**] अच्छा, सकीना, तैयारी कर। शाम गहरी हो चली, पडावोकी आवाज धीमी पडने लगी। थोडी देरमे जोधाबाईके महलकी ओर चलेगे।

सकीना—जो हुक्म, शाहजादी।

[चाँद डूबा नही पर सीकरीकी दीवारोके पीछे जा छुपा है। किलेके महलोपर हल्की छाया है। दूरी अँधेरेका सहारा हो गई है। अकेला राजा जोधाबाईके महलकी सीढियोपर खड़ा है]

[जहाँनाराका प्रवेश, सकीनाके साथ]

सकीना—शाहजादी, सीढियोके पास, ये रहे बूँदीके महाराज।

राजा—देवि, छत्रसाल उपस्थित हैं। अभिवादन! [**झुकता है**] स्वागत!

जहाँनारा—प्रसन्न है, महाराज?

राजा—अभीष्ट उपस्थित होनेपर जितनी प्रसन्नता साधकको होती है, उससे कम मुझे नही, देवि! अहोभाग्य जो आपके दर्शन हुए!

जहाँनारा—मिलकर प्रसन्न हुई, महाराजा।

राजा—आप चिन्तित है, शाहजादी।

जहाँनारा—विकल हूँ, महाराज! चित्त अस्थिर है। पर भला केवल सुख किसका रहा है?

राजा—जानता हूँ, देवि, सल्तनतका बोझ कन्धोपर है। हिन्दुस्तानकी प्रजा इन्ही कन्धोकी ओर देखती है।

जहाँनारा—सल्तनतका बोझ, महाराज, ये कमजोर कन्धे नही सम्हाल सकते। उसका भार उन कन्धोपर है जिनपर फरिश्तोको शरमा देने वाला महाराजका मस्तक है।

राजा—दुनिया जानती है, शाहजादी, कि दिल्लीका तख्त उस करुण नारीकी मेधापर टिका है जिसका आसरा बादशाहको भी है, उसका अवलम्ब शाहजादा दाराको भी, और ।

जहाँनारा—कहे चल, महाराज!

राजा—नही कहूँगा, देवि, यह अपनी बात है और अपनी बात न कहूँगा। इस कठिन कालमे पासकी सीमापर उठते-मँडराते मेघोकी श्यामल छायामे अपनी बात कहना स्वार्थ होगा।

जहाँनारा—सच महाराज, सरहदपर खतरेके बवडर जो सल्तनतको निगल जानेके लिए मुँह बाये बढे आ रहे है। मँडराते मेघोके नीचे कूचके डके और मातमके बाजे बज रहे है। दिल बैठा जाता है। क्या होगा, महाराज?

राजा—क्या होगा, सो नही कह सकता, शाहज़ादी, पर क्या करूँगा, वह जानता हूँ।

जहाँनारा—वह तो मै भी जानती हूँ, महाराज! जानती हूँ, राजपूत खूनकी होली खेलता है। उसके लिए जग त्योहार है, मौत एक बहाना। पर मै पूछती हूँ क्या हश्र होगा इस खानदानका जिसके शाहजादे एक दूसरेके खूनके प्यासे हो रहे है?

राजा—नही जानता, देवि, सो नही जानता। बस एक बात जानता हूँ—यह तलवार है जिसे सल्तनतकी रक्षाकी शपथ लेकर धारण किया है, इसे बेआबरू न होने दूंगा। तलवारसे बढकर राजपूतके लिए दूसरी कोई चीज़ नही।

जहाँनारा—जानती हूँ, महाराज ! यह कौल नही, स्वभाव है। राजपूतके दायरेमें जो आते हैं उनका सहारा भी उसकी यही अचूक तलवार होती है। उसी तलवारको अपना करने आज आई हूँ।

राजा—वह तलवार कब अपनी न थी, देवि ? कब वह उस अवसरकी प्रतीक्षामे न रही जब आपके काम आकर निहाल हो जाय ?

जहाँनारा—वह पूछनेकी बात नही, महाराज ! पर आज एक बात कहने आई हूँ। खासकर आपसे। इस छिपते चाँदके सायेमे, इन जोधा-बाईके महलकी पवित्र दीवारोंके सायेमे, भीगती रातके सन्नाटेमे कुछ कहने आई हूँ।

राजा—कहे देवि, छत्रसाल उन्मुख है।

जहाँनारा—आज मैं आपेमे नही हूँ, महाराज ! मुझे दुश्मनकी बहादुरी और उसकी ताकतका डर नही है, और न इसका कि बाबरकी बनाई इमारतकी नीवकी ईंटे बिखर जायेंगी। ना, कत्तई नही। बात कुछ और है जो मुझे बेदम किये दे रही है। कैसे कहूँ ? बात जबानपर आती-आती लौट जाती है। अच्छा, एक बात बताओ, राजा !

राजा—पूछे शाहजादी।

जहाँनारा—क्या सारे राजपूतोंको अपने कौलका अभिमान है ? क्या धर्मातकी हार आगेकी मुसीबत खोलकर नही रख देती ? क्या जोधपुरकी रानीने जो जसवतसिंहके सामने किलेके दरवाजे बन्द करा दिये थे, उसके कुछ माने नही ? मैं जो बात कहना चाहती हूँ उसे कह नही पा रही हूँ, महाराज, पर पूछती हूँ क्या दाराका भविष्य उस आचरणमे नही बँधा है ?

राजा—अच्छा होता, शाहजादी, आज आप उस बातको न उठाती। अनेक-अनेक रातें मारवाड-नरेशके उस आचरणको गुनती रही है। उसका उत्तर वास्तवमे वही है जो मेवाडकी लाज उस जोध-

पुरकी रानीने अपने आचरणमे दिया। और आगे मुझे कुछ कहने-पर वाध्य न करे, देवि।

जहाँनारा—नही, वाध्य नही करूँगी। वस इशारा भर करना चाहती थी कि अपनी दीवारकी ईंट ढीली हो रही है, राजपूतके ईमानमे बट्टा लगनेवाला है। सूरजमे कालिख लग जायगी, महाराज, अगर राजपूतकी तलवार घुटनेपर टूटी।

राजा—छत्रमाल राजनीति नही जानता, देवि। न पिछले आचरणको देखकर अगली घटनाओको समझनेकी ही उसमे शक्ति है और न ही उस आचरणको याद करने-गुननेकी अव क्षमता। पर हाँ, जो जोधाबाईके महलकी इन पवित्र दीवारोको छूकर, उस डूबते चाँदको साक्षी कर वह प्रण करता है कि उसकी तलवार घुटनेपर न टूटेगी। काश, देवि, मै शिप्राके तटपर रहा होता।

जहाँनारा—जानती हूँ, महाराज, तब पाँसा पलट जाता। तब हाजीकी दिलेरी भी बूँदीकी धारमे डूब जाती, पर उस बीती वातको जाने दो। और याद रखो कि बेशक मै चाहती हूँ कि सूरजमे कालिख न लगे, कि राजपूतकी तलवार घुटनेपर न टूटे, पर उसके नतीजेसे काँप उठती हूँ, राजा। और यह साध कि राजपूतकी तलवार घुटनेपर न टूटे और राजपूतकी उम्र लाख बरस हो, मेरी छातीकी धडकन है।

राजा—न कहे, शाहजादी, रहने दें, घाव खुल जायगा।

जहाँनारा—राजा, आज अगर सल्तनतका खतरा सामने न होता तो अपनी वात कहती।

राजा—न कहे, देवि, वह वात। उसका बोझ बाहरकी ओछी हवा न उठा सकेगी। हृदयकी पावन दीवारे अपने घेरेमे मन्त्रकी भाँति उसे रखेंगी। उसी मन्त्रकी सौगन्ध खाकर, उसी वातको साक्षी

कर, छत्रसाल आज नतमस्तक होता है, अपने प्राणोसे अजलि भरकर उसे भेंटता है।

जहाँनारा—वस-वस महाराज, उन्हे इस प्रकार दान करनेका हक आपको नही। [कांपती आवाजमे] वे सल्तनतकी धरोहर है, मेरे अरमानोके देवता! एक वात कह दूँ—वादशाहको अपने तख्तताऊसपर इतना नाज़ नही जितना तुम्हारी आनपर है, तुम्हारी तलवारके पानीपर।

राजा—वह तलवार, शाहजादी, उस नाज़ और उस विश्वासको किसी अशमे झूठा न करेगी।

[क्षणभर चुप्पी]

जहाँनारा—अगला मोर्चा कहाँ है, राजा?

राजा—अगला मोर्चा आगरेके पास ही होगा, शायद सामूगढमे। दकनकी सेनाएँ मजिलपर मज़िल मारती आगरेकी ओर वढी आ रही है। शाहजादा दारा भी दिल्लीसे निकल पडे है। मेरे और जोधपुरी रिसाले भी पूरवको मज़िल तै कर रहे है। अम्वरकी फौजे वयानाके किलेमे डेरा डाले पडी है, समरके लिए कटिवद्ध। मै पौ फटते कूच कर दूँगा।

जहाँनारा—सामूगढ वहुत पास है, राजा! गुजरात और दकनकी शामिल फौजे अपनी मज़िलें तै कर रही है। मुराद और हाजी दोनो गजवके लडाके है, गजवके मक्कार। और हाजी तो शैतानकी हसरत वनकर उतरा है। उधर शुजा वगालसे रातदिन वढा चला आ रहा है। सुना है चुनार तक आ पहुँचा है। खुदा ही खैर करे!

राजा—खतरा वडा है, मै इसमे इन्कार नही करता। अपनी हालत नाजुक है, इसमे भी नही। पर प्रयत्न करना अपना काम है। प्रयत्नसे मुँह मोडना कायरता है। लडाईके मैदानमे उनसे सामना होगा जो

सल्तनतके ताजपर आँख लगाये है। शाहजादी, मुराद और शुजा वीर है, बांके लडाके है, पर डर उनमे नही है। जबतक शराबके दौर उनसे नही छूटते, उनसे कोई खतरा नहीं। खतरा उससे है जो धर्मके नामपर रक्तकी नदी बहाना और उसे लांघना है। उसका मुकाबला जरा तीखा होगा।

जहाँनारा—हाँ, उसका मुकाबला जरा तीखा होगा। उसके सामने रोशनारा-का पलडा भारी है। रोशनारा और हाजी बाबरकी इस इमारत-की जड खोदनेपर आमादा है। हाँ, और खोद दे उसकी जड, मै उससे भी नही डरती। दारा और सिकन्दरकी सल्तनते भी आज वियाबाँ-मे खो गई है, उनकी शान आज सुननेकी कहानी बन गई है। चगेज और तैमूरकी सल्तनते भी आज बीते सपने बन गई है। सच, मुझे सल्तनतको कायम न रख सकनेका इतना मलाल नही जितना इस बातका है कि मक्कारीका दामन बढता जा रहा है। और शायद जीत उसीकी होगी, राजा, मेरे अवलम्ब तुम हो। पत रखना, राजा।

राजा—राजपूतके पास उस मक्कारीका जवाब नही है, शाहजादी। उसकी परम्परामे अलाउद्दीन और हाजी नही आते, कुम्भा और साँगा आते है, जो आनपर मिट जाते है। जाता हू, जिस प्रणको इन पवित्र दीवारोंको सुनाकर घोषित किया है, उसे पूरा करूगा। सामूगढपर ही शायद घमासान होगा। वही राजपूती जानकी परीक्षा है। पठानोंने घरकी इस लडाईकी आडमे मुजफ्फरका इलाका ले लिया है। पजाब बेदम है, बगाल आजाद हो चला है। उसका हाकिम शुजा अपनेको शाह ऐलान कर चला है। मुराद अपनी गुजराती सेनाके सामने कबका राजतिलक ले चुका है। पर दाव लगानेवाला हाजी है। जाता हू, जीतकी आशा नही दिलाता, देवि, जीतका फैसला कही और होता है, पर मै

विश्वास दिलाता हूँ कि सामूगढ धर्मात नही बनने पायगा। लोहे-से लोहा बजेगा, राजपूतकी बाँह न थकेगी। जाता हूँ, दाराका झण्डा मुझे भी उठाना है और जो बचा रहा तो शायद फिर कभी यह आवाज सुननेको मिले।

जहाँनारा—जाओ, राजपूत! जाओ, राजा! तुम्हारे प्राणोकी रक्षा मेरी दुआएँ करेगी। जाओ, सब कुछ मिट चुका है, जो है, खतरेमे है, पर इमान अब भी अपनी आनपर डटा है, अपने कौलपर कायम है—यह कुछ कम सन्तोषकी बात नही।

[प्रस्थान]

चौथा दृश्य

[आगरेका किला! शाहजहाँका शीशमहल। बाहर दरबारे-आमके सामने बड़े मैदानमे घोड़े-हाथियोका जमघट। सामूगढके युद्धमे दाराशिकोह और राजपूतोकी पराजय। भागा हुआ दारा। दरबारे-खासमे शाहजहाँ खडा है, जहाँनाराके आगे। सामने दारा, सरदारोके साथ]

दारा—सब खो गया, जहाँपनाह! सारा खत्म हो गया!

शाहजहाँ—सब खो गया, दारा, सल्तनत खाकमे मिल जायगी। हाजी, मुराद और शुजाको भी कुचल देगा। बेटा, अब क्या होगा?

दारा—नही जानता, अब्बाजान, अब क्या होगा! खुदा समझेगा जालिमो-से। जहाँ तक फर्ज था, किया, अब बियाबाँकी खाक छानने चलता हूँ।

शाहजहाँ—बेटे, इतनी बडी सल्तनतमे क्या तुम्हे पनाह नसीब न होगी जो दर-ब-दर फिरने जा रहे हो? ठहरो, दारा, शाहजहाँका बुढापा अभी बुजदिलीका कायल नही हुआ। आने दो उन्हे।

एक बार फिर जगमें उतरूँगा। फरगना और काबुलकी तलवार एक बार फिर आगरेके हरममें चमकेगी।

दारा—अब्बा, उतावले न हों। सब कुछ खोकर भी अभी कुछ बाकी है। राजपूतोंके सूरमा अभी सल्तनतको उखडने न देंगे। पंजाब और मारवाड, सिन्ध और पहाड अब भी हाथमें है। जाता हूँ एक बार और किस्मत आजमाने। अगर जिन्दा रहा तो लौटकर कदम चूमूँगा। अलविदा! [शाहजहाँकी ओर बढकर घुटने टेक देता है। शाहजहाँ उसके सिरपर हाथ फेरता है।]

शाहजहाँ—जाओ, दारा, सब कुछ मेरे जीते-जी ही लुट गया। आज शायद इसी घडीमें इस अपने ही बनाये महलका एक चप्पा अपना नही, सहारा लेनेको एक खम्भा तक नही। जाओ, बेटे, कोशिश करनेमें न चूको। अल्लाह तुम्हारी मदद करेगा। अलविदा!

[दारा और शाहजहाँका गले मिलना]

दारा—[बहनसे] बहन जहाँनारा, दारा तुम्हारी हजार-हजार मेहरबानियोंका कर्जदार है। हजार-हजार शुक्रिया! बियाबांमें लौटकर मिलूँगा। अलविदा! [गलेमें लगा लेता है।]

जहाँनारा—[भर्राई आवाजमें] भाई, जवाँमर्द दारा, अलविदा! जाओ भाई, खुली हवामें जाओ। आगरेकी दीवारोंपर शैतानका साया पड गया है। दूरके जंगल और रेगिस्तान अब भी आजाद हैं, आज भी उनपर खुदाका नूर बरस रहा है, उनकी आजाद हवामें साँस लो। हमें खुदाकी रहमत और हमारी किस्मतपर छोड दो। जाओ, भाईजान, बहनकी हजार दुआएँ तुम्हारी रक्षा करेंगी। बचपनकी हजार साधें तुम्हारे साथ जायँगी, अलविदा! हुनर और तलवारकी हदें नहीं होतीं, दारा, जाओ खुली हवामें उन्हें परखो। अलविदा!

[दाराका प्रस्थान]

शाहजहाँ—[बैठता हुआ] जमाना बदल चला है। किस्मतने करवट ली है। अब्बा आजमके आखिरी दिन इन्ही हाथोने सदमेमे डाल दिये थे, अब शायद ये खुद दूसरोका आसरा करनेवाले है। पर न, मक्कारोकी हुकूमत मुझे मजूर न होगी। या खुदा, क्या होनेवाला है ? इसी अपने बनाये हरमसरामे मोती मस्जिदकी इन्ही बुर्जियोके नीचे, क्या शीशमहलकी इन्ही दीवारोके भीतर शाहजहाँको कैदके दिन काटने होगे ? ताजकी मीनारो ! अपने शाहजहाँको अपने सायेमे बुला लो, जगह दो !

जहाँनारा—अब्बाजान, वक्त इम्तहानका है, हिम्मत न हारे। आपने दकन और काबुल जीते है। दुनिया कभी अपनी थी, आज नही है। पर सिर और हिम्मत अपने है, नही झुकेगे। चले, अन्दर चले। दाराके हौसले आज भी सितारोकी बुलन्दीपर है, उसके राजपूतो-मे आज भी गजबकी बहादुरी है। किस्मत फिर करवट लेगी, जहाँपनाह !

[शाहजहाँ जाता है। सकीनाका प्रवेश]

सकीना—[जहाँनाराके कानमे दर्दके साथ] शाहजादी, बूँदीके रिसाले-का एक सिपाही हाज़िर है। राजाका पैगाम लेकर आया है। आपसे ही कुछ कहना चाहता है। घायल है।

जहाँनारा—लाओ उसे सिपाहबुर्जकी सीढियोपर। मै उसीके साये बैठती हूँ। [जहाँनाराका सिपाहबुर्जके नीचे बैठना। सकीना-का बाहर जाकर फिर राजपूत सैनिकके साथ प्रवेश कर सीढियोपर रुक जाना।]

सिपाही—[मस्तक झुकाता हुआ] ताब नही है, शाहजादी, महाराजका सेवक घायल है।

जहाँनारा—सकीना, हकीम, जर्राह !

सिपाही—[बात काटते हुए] नही शाहजादी, अब हकीमके किये कुछ न होगा। बस सुन भर ले, समय नही है।

जहाँनारा—बोलो, जवाँमर्द, राजा कहाँ है ?

सिपाही—महाराज वहाँ है, शाहजादी, जहाँ राजके लिए भाइयोंमे रक्तपात नही होता, जहाँ बेटा बापकी मृत्युके लिए प्रार्थना नही करता, उसके रक्तका प्यासा नही होता, जहाँ केवल मत्र और शान्ति है।

जहाँनारा—हूँ! [भर्राई आवाजमे] राजा, तुमने अपना कौल पूरा किया!

सिपाही—सामूगढकी लडाई कुछ साधारण न थी। भयानक घमासान हुआ। [दम लेकर] और बूँदीका रिसाला घिर कर भी लडता रहा। महाराजने घिरकर भी असुर-विक्रमसे युद्ध किया। शत्रु उनकी वीरता देख-देखकर दग रह गये। पर मौत सिरपर नाच रही थी। पहले भाला टूटा, फिर तलवार टूटी, अन्तमे शत्रुके भालेने उन्हे स्वर्ग पहुचा दिया।

जहाँनारा—हाय!

[सिपा]ही—[दम लेकर] गिरते-गिरते उन्होने एक मुक्ताहार निकाला और मुझे देते हुए कहा—'इसे शाहजादीको देना और कहना कि छत्रसालके कधोपर अब गर्दन नही रही जहाँ वह इसे धारण करे।' 'इसे स्वीकार करे, शाहजादी, अब मै चला। [लुढक जाता है]

[जहाँनाराका हार ले लेना। हार देते-देते राजपूतका गिरकर दम तोड देना]

जहाँनारा—राजा, तुम सूरमा हो, फरिश्तोसे ऊचे, जन्नतके पाकीजा प्यार। छत्रसाल! इस सल्तनतकी वह शाहजादी, जिसके दामनपर कि किसी मर्दका साया भी नही पडा, तुम्हारी पूजा करती है। उसे [illegible]

का जर्रा-जर्रा तुम्हारा शुक्रगुजार है। उसकी रग-रगमे तुम्हारे नाम-की रवानी है। जहाँनाराके छत्रसाल, तुमने अपना कौल निभाया, जहाँनारा भी अपना वह कौल निभायगी, जो किसीने न सुना। [दम लेकर] सुन ले, सकीना। सुनो, सूरज और चांद, जमीन और आसमान—जहाँनारा छत्रसालकी है, बूँदीके जवांमर्द राजाकी, और जबतक वह साँस लेती है, उसकी साँसमे राजाके नामकी पुकार होगी। जहाँनाराके दिलमे राजाका वास होगा और उस दिलकी मजार ताजके रौजेसे कही पाक होगी। उसकी सदाएँ ताजकी बुर्जियोसे कही ऊँची उठेगी। अल्विदा, राजा! अल्विदा मेरे छत्रसाल!

[यवनिका]

गणतन्त्रगाथा

पहला दृश्य

वाचिका—न सा सभा यत्थ न सन्ति सतो न ते सतो ये न भणन्ति धम्मं ।
राग च दोस च पहाय मोह धम्म भणन्ता न भवन्ति सतो ॥

वाचक—साधु ! साधु ! देवि, साधु ! जातककी अत्यन्त प्राचीन गाथा है यह—वह सभा नही जहाँ सन्त न हो, वे सन्त नही जो न्यायसगत वात न कहे । जो राग-द्वेषादि छोडकर न्यायसगत धर्मकी बात कहते है, सन्त वे ही है ।

वाचिका—उन्ही सन्तोकी वाग्मितासे हमारी समिति और सभा मुखरित हुई थी हमारे गण और सघ, श्रेणी और पूग, वर्ग और निकाय, हमारी लोक-सभाके सुदूर पूर्ववर्ती ।

वाचक—उस परम्पराके प्रतीक थे हमारे अन्धक और वृष्णि, शाक्य और कोलिय, लिच्छवि और विदेह, मल्ल और मोरिय ।

वाचिका—कठ और अरट्ट, क्षुद्रक और मालव, क्षत्रिय और यौधेय, आर्जुनायन और माद्रक, आभीर और पुष्यमित्र ।

वाचक—लोकसग्रह लोकक्षेमके आग्रहसे सजीव थे हमारे वे गणतन्त्र, शक्तिकी सीमा, दुर्बलके बल—

वाचिका—अति प्राचीन उन्ही अन्धक-वृष्णियोके सघमे—

अक्रूर—नही, सघ मेरे वादको सुने, उसकी अवमानना न करे । राजन्य उग्रसेनके शासनने उसे सम्पुष्ट किया है । इस वादमे अन्धकोकी अभिरुचि है, अन्धक-वृष्णियोका सघ इसे सुने ।

आहुक—वृष्णियोके राजन्यपर, वासुदेव कृष्णपर, यहाँ आरोप उपस्थित है, राजन्य उग्रसेन, आरोपकी सब अवमानना करे ।

अक्रूर—व्यक्तिकी मर्यादा वर्गकी मर्यादासे वडी नही, वर्गकी मर्यादा गणकी मर्यादासे वडी नही, आहुक, गणकी मर्यादा सघकी मर्यादासे वडी नही। फिर वासुदेवने बार-बार अन्धकोकी, उनके राजन्य उग्रसेनकी, भर्त्सना की है। राजन्य उग्रसेनसे निवेदन करता हूँ, सघसे विनीत आवेदन करता हूँ, सघ सुने वादकी अवमानना न करे।

उग्रसेन—सघ वाद सुने। अन्धकोके परम विरोधी वासुदेव कृष्ण आरोपका भजन करे। दूसरोपर आरोप करनेमे वे स्वय सतत जागरूक रहते है, दोषदर्शनमे स्वय सदा तत्पर, कभी विरमते नही, पलक नही मारते, अक्रूरको वे वाणी दे, आरोपका प्रतिवाद करे। सघ वाद सुने।

अन्धक वर्गके प्रतिनिधि—सुने! सुने!

वृष्णि वर्गके प्रतिनिधि—नही! नही!

कृष्ण—कृष्ण अक्रूरकी वाणी सुनेगा, आरोपकी अवमानना न करेगा। क्या है अक्रूरका वह आरोप? सघ अक्रूरका अभियोग सुने—

अक्रूर—आरोप है—वृष्णि वर्गके नेताका सघके प्रतिकूल आचरण, वार्ष्णेय कृष्णका कौरव-पाण्डव युद्धमे पक्ष-धारण, जब कि अन्धक-वृष्णि-सघने उसके विपरीत अपनी उदासीन नीति घोषित की थी।

व. वर्ग—साधु! साधु।

कृष्ण—मेरा आचरण सघके प्रतिकूल नही था, अक्रूर।

अक्रूर—वासुदेवने क्या अर्जुनका रथ-सचालन नही किया था?

कृष्ण—किया था, अक्रूर, पर निरस्त्र।

वृष्णि वर्ग—साधु! साधु।

अक्रूर—वासुदेवने क्या युद्धमे उदासीन सव्यसाचीको समरके लिए तत्पर नही किया था?

कृष्ण—किया था, अक्रूर, तत्त्वबोधके लिए।

वृष्णि वर्ग—साधु, वासुदेव, साधु !

अक्रूर—क्या वासुदेवने पाण्डवोंकी विजयकामना नहीं की थी ?

कृष्ण—की थी, अक्रूर, सत्यपक्षकी विजय-कामना की थी। मनसा निरोध सघका आदेश नहीं, वचसा निरोध उसका दर्शन नहीं, कर्मणा निरुद्ध मैं स्वय रहा हूँ। अक्रूर, तुम्हारा आरोप निष्प्राण है। मैंने युद्ध रोकनेके हजार प्रयत्न किये और विफल हो विना अमर्षके भगिनीपति मध्यपाण्डवका निहत्था सारथी बना। वाद असिद्ध है, अक्रूर।

वृष्णि वर्ग—असिद्ध ! असिद्ध !

अक्रूर—और सुभद्राका अर्जुनके साथ पलायन किस योजनाका परिचायक था, कृष्ण ?

कृष्ण—यह विषयान्तर है, अक्रूर !

अक्रूर—और चक्रधरने शिशुपालका वध क्यों किया था ? पत्नीविरहित शिशुपालने पत्नी-अपहारी कृष्णके राजसूयमें पूजनका उचित विरोध ही तो किया था ?

कृष्ण—विषयान्तर है वह भी, अक्रूर, वादकी पुष्टि करो।

वृष्णि वर्ग—वाद निरारोपित हुआ। अभियोग असिद्ध !

अक्रूर—नारीचोर ! भगिनी भगानेवाला ! सघभेदक कृष्ण !

वृष्णि वर्ग—कुवाच्य ! कुवाच्य !

अन्धक वर्ग—नारीचोर ! सघभेदक !

[अनेक कण्ठोंकी मिलीजुली आवाज़, शोर]

दूसरा दृश्य

वाचक—पुरानी बात है, प्रायः ढाई हजार साल पुरानी, जब अपने भिक्खुओंको पुकारकर, अभिराम दुकूल धारे आभरणोंसे दमकते रजतरथोंपर चढ़े लिच्छविकुमारोंको दिखाकर तथागतने कहा था—"देखो, भिक्खुओ, देखो—स्वर्गके तैंतीस देवताओंको जो तुमने अन्तर्दृष्टिसे अबतक न देखा हो तो, भिक्खुओ, उन्हें अब देखो। इन लिच्छवियोंको देखकर उन्हें जानो। साक्षात् देखो उन्हें, सशरीर देखो"—

वाचिका—उन्हीं लिच्छवियोंकी वैशालीमें लक्ष्मीका लाड़ला वह महानाम था जिसकी एक कन्या थी, आम्रपाली। पोर-पोर सोनेकी [illegible] चली। उसकी लोनी कायामें जब [illegible] उठी [illegible] बन गई। नागरिकाओंकी अलकोंके फूल मुरझा गये, उनके [illegible] कुन्तल रूखे हो गये, कजरारे उपाङ्ग सूने। उनके सजन सो गये, रनिवासोंकी रागिनियाँ मूक हो गईं।

वाचक—और जब कन्याका यौवन मद-सा [illegible] उठा, विषजिह्वा लपलपाता उसे डसने लगा और राजाओं-श्रीमानोंकी प्रणयभिक्षा जब आम्रपालीने अस्वीकृत कर दी तब महानाम जा पहुँचा लिच्छविगणके संथागारमें—

वाचिका—सात हजार सात सौ सात लिच्छवि कुलोंका, कुलपति [illegible] का, गण था वह। उसी वैशालीके लिच्छविगणके संथागारमें—

महानाम—महानामकी कन्या है यह, यह आम्रपाली, संथागारके [illegible] पर खड़ी। राजाओं, श्रेष्ठियों, [illegible], [illegible] प्रस्ताव इसने उपेक्षित कर दिये हैं। गण [illegible], इसका भविष्य विचारे। [illegible] कन्याका गण विधान करे, [illegible]

से वैशाली भरी है, गण विचार करे, गण विधान करे, गण कन्याका मङ्गल करे, यह मेरी ज्ञप्ति है, यही मेरी कम्मवाचा है।

अर्णव—आदरणीय गण सुने—यह मेरी प्रतिज्ञा है—आदरणीय गण उचित परामर्शके अर्थ गुप्त अधिवेशन करे। आदरणीय गणको यदि यह मान्य हो तो वह मौन रहे, आदरणीय गणको यह अमान्य हो तो वह बोले।

मैं फिर कहता हूँ—"आदरणीय गण सुने—मैं फिर कहता हूँ आदरणीय गण सुने"—आदरणीय गण मौन है मेरी प्रतिज्ञा स्वीकृत हुई। गुप्त अधिवेशन हो!

वाचक—और 'राजा'ने गुप्त अधिवेशनका निर्णय गणको सुनाया—"आम्रपाली स्त्रीरत्न है, गणकी! गणकी एकजाई सम्पत्ति, एकाकी प्रभुत्वसे ऊपर! परम्पराके अनुसार महानाम उसे गणको सौंप दे।"

तीसरा दृश्य

वाचिका—राजगृहके महलोमे पितृहन्ता अजातशत्रु व्याकुल टहल रहा है। वज्जियो-लिच्छवियोके आक्रमण आये दिन मगधपर होते रहते है। गगा लाँघ वे उसके तटवर्ती गाँवोको लूट लेते है। पाटलि गाँवके समीप गगा और शोणके कोणमे उसने उन्हे रोकनेके लिए कोट बना रक्खा है, पर उसमे रक्षा हो नही पाती। वज्जियोका सघ जीतकर वह मगधमे मिला लेना चाहता है पर उन्हे जीत पाता नही वह।

वाचक—लाचार वह अपने मन्त्री वस्सकारको तथागतके पास गिद्धकूट पर्वतपर वज्जियोको जीतनेका उपाय पूछने भेजता है। वस्सकारके मनकी बात तथागत समझ लेते है, उसका उत्तर वे आनन्दको देते है—

बुद्ध—आनन्द, क्या तुम जानते हो कि वज्जी जल्दी-जल्दी और भरी-भरी अपनी बैठकें करते हैं ?

आनन्द—जानता हूँ, भन्ते ।

बुद्ध—जानते हो, आनन्द, कि वज्जी एकमत होकर मिलते हैं, एकमत होकर कार्य करते हैं ?

आनन्द—हाँ, सुगत, जानता हूँ ।

बुद्ध—जानते हो, आनन्द, कि वज्जि लोग प्राचीन नियमोंका उल्लंघन नहीं करते, प्राचीन संस्थाओंके अनुकूल कार्य करते हैं ?

आनन्द—हाँ, तथागत ।

बुद्ध—जानते हो, आनन्द, कि वज्जी वृद्धोंका आदर करते हैं, उनकी सलाह मानते हैं ?

आनन्द—भन्ते, जानता हूँ ।

बुद्ध—जानते हो, आनन्द, वे अपनी नारियों-बालिकाओंके साथ बल प्रयोग नहीं करते ?

आनन्द—हाँ, भन्ते ।

बुद्ध—जानते हो, आनन्द, कि वज्जियोंकी अपने चैत्योंमें, श्रमण दृढ़ निष्ठा है ?

आनन्द—जानता हूँ, भन्ते ।

बुद्ध—जानते हो, आनन्द, वज्जी अपने अर्हतोंका संरक्षण और पालन करते हैं ।

आनन्द—हाँ सुगत, जानता हूँ ।

बुद्ध—जब तक आनन्द, वज्जियोंका यह गणतंत्र [illegible] उनके पतनकी आशंका नहीं, तब तक वज्जी [illegible]

वस्सकार—[स्वगत] तब मगध द्वारा वज्जियों[illegible] हिमालय तक साम्राज्यके विस्तारका [illegible]

स्वप्न है। अब तो स्वामीको केवल मित्रभेदका, संघमें फूट डालने वाली नीतिके अवलंबनका मंत्र दूँगा।

[प्रस्थान]

नेपथ्यमें—बुद्ध सरणं गच्छामि !
धम्मं सरणं गच्छामि !
संघं सरणं गच्छामि !

चौथा दृश्य

[अनेक मानव ध्वनियाँ। क्षुद्रक-मालवोंका सम्मिलित अधिवेशन। तलवारोंकी रह-रहकर झंकार]

वाचक—तथागतके निर्वाण लिये दो सदियाँ बीत गईं। सहसा भारतके पश्चिमी आकाशपर तूफानके बादल घुमड़ने लगे। सिकन्दरने दाराके विस्तृत साम्राज्यकी रीढ़ तोड़ दी थी, और अब वह पंजाबमें था।

वाचिका—हिन्दूकुश और उद्यान, आभी और पौरव, अग्रश्रेणी और अबष्ठ, अरट्ट और कठ, यौधेय और आर्जुनायन एकके बाद एक सर हो गये। तब व्यासके तीर ग्रीकोंको सहसा काठ मार गया, प्राचीके राजा नन्दका उनमें डर समा गया। वे लौटे।

वाचक—पर उनका लौटना भी कुछ आसान न था, जब इंच-इंच धरतीके लिए गणतन्त्रोंके नागरिक जूझ रहे थे। तब प्रायः समूचे पंजाबपर, समूचे सिन्धपर गणतन्त्रोंके शासन कायम थे। और उन गणतन्त्रोंमें प्रधान हँसिया और तलवार एक साथ धारण करनेवाले क्षुद्रक और मालव रावीके तटपर थे।

वाचिका—सिकन्दरका समान संकट सिरपर आया देख उन्हीं क्षुद्रक-मालवोंके सम्मिलित अधिवेशनमें—

समवेत स्वर—मालव गणकी जय ! क्षुद्रक गणकी जय ! मालव क्षुद्रक सघकी जय !

[**शस्त्रोकी आवाज**]

संघराज—गणोके प्रतिनिधियो, पचनद यवनोसे आक्रान्त है, कुभासे गगा तक शत्रुकी छाया डोल रही है। क्या आज भी क्षुद्रको और मालवोका पुराना वैर बना रहेगा ? क्या आज इस समान सकटके सामने भी हम एका न कर सकेगे ?

[**नेपथ्यमे, मिली-जुली आवाजें—सुनो ! सुनो !—अनेक स्वर एक साथ**]

मालव गणराज—मालवोकी ओरसे वैर भाव मिटानेका शपथ मै लेता हूँ। इस समान सकटमे शत्रुका हम एक साथ सामना करेगे।

अनेक स्वर—मालव गणराजकी जय ! मालवोकी जय !

क्षुद्रक गणराज—क्षुद्रकोकी ओरसे मैं शपथ करता हूँ कि जब तक गणोका शत्रु क्षितिजसे ओझल न हो जायगा तबतक क्षुद्रक प्रतिहिंसाकी आवाज अपने भीतर उठने न देगे।

[**नेपथ्यमे, मिली-जुली आवाजे—अनेक स्वर एक साथ—क्षुद्रक गणराजकी जय ! क्षुद्रकोकी जय !**]

सघराज—नही गणप्रतिनिधियो, नही। इस मौखिक शपथसे काम नही चलनेका। हजार सालोसे चले आते वैरके दैत्यसे हमारा छुटकारा इस तरह नही होनेका। चाहता हूँ कि इस सकटके समय मालव और क्षुद्रक जो मिले तो सदाके लिए एक हो जाय। चाहता हूँ कि दस हजार मालव युवक दस हजार क्षुद्रक युवतियोसे ब्याह करे और दस हजार क्षुद्रक तरुण दस हजार मालव तरुणियोसे ब्याह करे। कौन है भला वे मालव और क्षुद्रक तरुण जो पुराना वैर भुलाकर गणोके इस गुहारको पालेगे ?

[नेपथ्यमे, अनेकानेक आवाजें एक साथ—हम पालेगें ! हम पालेंगे ! तलवारे खनकनेकी आवाजें, पैरोकी आवाजे, नदीकी कलकल—बीच-बीच ।]

सघराज—बन्धुओ, रावीके तटपर की हुई हमारी यह प्रतिज्ञा मिथ्या न होने पाये । अपनी इस पुण्य सलिला माताके जलको स्पर्श कर हम शपथ करे कि विदेशियोको उसकी घाटीमे, उसकी मिट्टीपर, प्राण रहते हम टिकने न देगे ।

[नेपथ्यमे—बहते जलकी आवाज, बहुतसे लोगोका एक साथ जल उठाना—मालवोकी जय ! क्षुद्रकोकी जय ! मालव-क्षुद्रकोकी जय ! गगनभेदी ध्वनि । शस्त्रोकी झकार ।]

पाँचवाँ दृश्य

वाचक—और जब सिकन्दरकी फौजे व्याससे लौटती हुई रावी और चुनाव के सङ्गमके दक्खिन मालव-क्षुद्रकोके जनपदकी ओर चली तब मालव और क्षुद्रक किसान भरे खेतोके बीच हँसिये फेक तलवारे सम्हालते गाँवोकी ओर दौडे, सीमाकी ओर जहाँ अपमानकी चोटसे खिझे ससारके विजेता जिन्दगीकी बाजी लगा बैठे थे—

[नेपथ्यमे—घोडोकी हिनहिनाहट, जख्मी सैनिकोकी कराह, योद्धाओका हुकार, हाथियोकी चिग्घाड ।]

सिकन्दर—सेल्यूकस, यवनियोंके वीर देखे, मिस्रके लडाके, पारदके बाँके देखे, बाख्त्रीके योद्धा, पर आज जो देखा वह कभी न देखा !

सेल्यूकस—नही, सिकन्दर, बेसिखे किसानोका इस तरह मैदान लेना तो न देखा न सुना, और जो कही विजेताने उन्हीको उनके मुँहमे झोक लोहाने लोहा न काटा होता तो, ज़िउकी शपथ, रावी हमारी समाधि बन गई होती ।

सिकन्दर—इनके जैसे मनुज तो, सेल्यूकस, कहीं न देखे, न मकदूनियामें, न एथेन्समें, न स्पार्तामें ।

सेल्यूकस—और इन अराजक जातियोंका शासन भी अपने ग्रीक नगर-राज्योंका-सा ही लगता है । उनका न कोई राजा है, न सम्राट्, बस मुखिया हैं जो जनपदोंकी सम्हाल करते हैं ।

सिकन्दर—सोचता हूँ, सेल्यूकस, जो यह पौरव न होता, जो जानसे मजबूर किये हराये कबीले न होते तो मकदूनियाँका सितारा ना आज डूब ही चुका था, फिलिप और [illegible] नाम-लेवा भला आज कौन होता ? कौन अरस्तूकी उम्मीदोंका साकार बनाता ? क्या होता मेरी आशाओंका, मार जिनका आँचल पकड़ मैं देश-देश फिरता रहा हूँ, आवारा, जैसा उस [illegible] रहा था, साम्राज्यका एक छोर दबाता दूसरा अम्बरमें उठाता—

सेल्यूकस—सही, सिकन्दर, पर अब उसका अफसोस क्या ? उस सारी दुनिया भी सर हो गई—कठोंकी आजादीपर पौरव [illegible], अरट्टोंकी आजादीपर क्रातेरसकी तलवार झुक रही है, [illegible] घमण्डपर परदिक्कसका सौजन्य [illegible] है । परेशानी क्या है ?

सिकन्दर—परेशानीकी एक ही पूछी, सेल्यूकस ! आम्भी और पौरव [illegible] और अरट्ट, मालव और क्षुद्रक—एक आजाद हुए [illegible] । भारत ईरान नहीं है, बिथूनिया और मिस्र नहीं है, [illegible] ग्रीकोंका चंवर डोलना है । पर छोड़ो, [illegible] उसकी चिन्ता क्या ?

[सैनिकका प्रवेश]

सैनिक—विजेता, क्षुद्रकोंके सौ प्रतिनिधि आ गये हैं, [illegible] लिये हुए, विजेताके प्रसादके याचक हैं ।

सिकन्दर—सेल्यूकस, जाओ आदरसे उन्हें बैठाओ । [illegible] कि वे अपनी पराजय भूल जायें । [illegible]

ये कारचोबीके कुर्ते पहननेवाले, पुरसे-पुरसे भरके जवान, रूपमे अपोलोको लजा देनेवाले। जाओ, उनका स्वागत करो।

[प्रस्थान]

वाचक—सिकन्दरका दरबार लगा है, स्वर्ण और कीमती वस्त्र क्षुद्रकोके प्रतिनिधि उसे भेट कर रहे है। साडो और बैलोके जोडे, घोडो और सुन्दर भेडोकी पंक्तियाँ, मैदानमे भेटमे आई हुई खडी है। और सिकन्दर अपनी जीतका वैभव पुलकित देख रहा है।

सिकन्दर—दूतराज, क्षुद्रकोको मै शत्रु नही मानता, न अपनेको मै उनका विजेता मानता हूँ।

दूत—विजेताकी यह उदारता है जो वह क्षुद्रकोको शत्रु नही मानता, अपनेको उनका विजेता नही मानता। पर बात यह बदलती नही कि आप विजेता हो, क्षुद्रक हारे हुए है। हाँ, उस हारका एक राज जरूर है।

सिकन्दर—वह क्या, मेरे मित्र ?

दूत—कि क्षुद्रक कायर नही है, शौर्यकी उनमे कमी नही। बात बस इतनी है कि उनका दैव उनसे रूठ गया है, और कि वे फिर लडेगे, फिर-फिर लडेंगे। पर अभी तो विजेता यह हमारी भेट स्वीकार करे, हमारी अराजक सत्ताके साथ उदारतासे व्यवहार करे।

सिकन्दर—जाओ दूतराज, स्वच्छन्द हो, तुम्हारे राष्ट्रको कोई जीत न सकेगा। ज़मीन जीती जाती है, मैदान जीते जाते है, पर आदमी नही जीता जाता, आज़ाद दिलोपर हुकूमत नही होती। जाओ, तुम्हारी यह उदार भेट हम मित्रवत् स्वीकार करते है। और तुम्हारे देवप्रतिम मित्रोकी राह अकण्टक हो!

[प्रस्थान—दूर जाते हुए घोडोकी टापोकी आवाज़]

छठाँ दृश्य

वाचक—सिन्धके जनपदोंकी आजादी भी मिट गई। गिरि और [illegible] पराभूत हो गये। ग्रीकोंका झंडा वहाँ भी फहराया। पर बगावत के झण्डे एकाएक गाँव-गाँवमें खड़े होने लगे, सिकन्दरको गाँव-गाँव लौट बागियोंका सामना करना पड़ा। जब उसने जाना कि विद्रोह फैलाने वाले ब्राह्मण और ऋषि हैं तब उसने एक दिन उनके मुखियोंको पकड़ लिया। उनका न्याय शुरू हुआ।

सिकन्दर—[साधुओंसे] प्राणदण्डके अधिकारी हो, पर सुना है हाजिर-जवाब बड़े हो, सो उसका सबूत देना होगा। तुममेंसे एक न्यायाधीश बनेगा, बाकियोंसे मैं एक-एक सवाल करूँगा और जिस साधीका [illegible] जवाब होगा उसीके मुताबिक पहले-पीछे तुम सबको प्राणदण्ड भी मिलेगा। और उस खूबीका निर्णय न्यायाधीश करेगा।

वाचक—नंगे मुसकराते साधु चुपचाप सुनते रहे, सिकन्दरके सवालोंके इन्तजारमें उसकी ओर देखते रहे।

सिकन्दर—[एकसे] तुम्हारे विचारमें जीवितोंकी संख्या अधिक है या मरे हुओं की?

[illegible] साधु—जीवितोंकी, क्योंकि मरे हुए [illegible] फिर नहीं [illegible]।

सिकन्दर—[दूसरेसे] जीव समुन्दरमें ज्यादा हैं या जमीनपर?

दूसरा साधु—जमीनपर, क्योंकि समुन्दर जमीनका ही एक हिस्सा है।

सिकन्दर—[तीसरेसे] जानवरोंमें सबसे बुद्धिमान कौन है?

तीसरा साधु—[हँसकर] वह जिसका पता मनुष्य अभी नहीं लगा पाया और जो उसकी नजरसे आजाद, [illegible] है।

सिकन्दर—[चौथेसे] तुमने [illegible] बगावत [illegible]।

चौथा साधु—क्योंकि मैं चाहता था कि अगर [illegible] साथ और मरें तो इज्जतके साथ।

सिकन्दर— [पाँचवेंसे] पहले कौन वनाया गया, दिन या रात ?

पाँचवाँ साधु—दिन पहले वना, रातसे एक दिन पहले ।

सिकन्दर— [गुस्सेसे] क्या मतलव ?

साधु—मतलव कि असम्भव सवालोका जवाव भी असम्भव होता है ।

सिकन्दर—[छठेसे] मनुष्य किस प्रकार दुनियाका प्यारा हो सकता है ?

छठा साधु—वहुत ताकतवर, पर साथ ही प्रजाका प्यारा होकर, जिससे प्रजा डरे नही ।

सिकन्दर—[सातवेंसे] मनुष्य देवता कैसे वन सकता है ?

सातवाँ साधु—अमनुजकर्मा होकर ।

सिकन्दर—[आठवेंसे] जीवन और मृत्यु दोनोमे अधिक वलवान कौन है ?

आठवाँ साधु—जीवन, क्योकि वह भयानक-से-भयानक तकलीफ वरदाश्त कर सकता है ।

सिकन्दर—[नवेंसे] कवतक जीना इज्जतसे जीना है ?

नवाँ साधु—जव तक मनुष्य यह न सोचने लगे कि अव जीनेसे मर जाना अच्छा है ।

सिकन्दर—[न्यायाधीशकी ओर फिरकर]—अव तुम मुझे वताओ कि किसका जवाव सवसे ज्यादा चुस्त है, कि उसे पहले प्राणदण्ड दे सकूँ ।

साधु—जवाव एक-से-एक वढकर है ।

सिकन्दर—[खीझकर] तव सवसे पहले तुम्ही मरोगे ।

[सहसा ग्रीक दार्शनिकोका प्रवेश]

ग्रीक दार्शनिक—[एक साथ] नही, नही, विजेता, अन्याय न करो । अव वारी तुम्हारी है जो वताये कि एक-से-एक वढकर जवावोमे सचमुच वढकर कौन है ? असलमे जवाव इसका अव इन साधुओ-की आजादी है, इन्हे छोड दो ।

सिकन्दर—[हँसता हुआ] जाओ, साधुओ, तुम आजाद हो। तुम्हारी निर्भीकताकी पहले बस कहानी ही सुनी थी, आज उसे अपनी आँखो देखा।

[प्रस्थान]

सातवाँ दृश्य

वाचक—यौधेयोके जलते हुए गाँव, जलती हुई खेती, गाँवके बाहर मैदानो-मे जूझते हुए यौधेय, कोटके भीतर दीवारोपर चढे भाग ताने वीर, नीचेसे उन्हे तीर थमाती नारियाँ—

समरगतनितन विजयी समुद्रगुप्तकी सेनाएँ पहुँचा ही चाहती है, झाडखण्डके यौधेयोके गाँव उजडते जा रहे है—

बेटा—जा-जा, लीक-लीक चली जा। गाड़ियाँ अभी कुछ ही दूर गई होंगी।

माँ—चुप कर, बड़ा आया गाड़ियोकी लीक बतानेवाला—तेरे दादाको इन्ही मैदानोमे जूझते देखा था, बाप तेरा अभी कल ही खेत रहा है, तू भी अगरपथका सैलानी बना, मेरा नन्हा बेटा, और मैं गाड़ियोकी लीक पकडूँ! तू जा अपनी राह। मैं गाँवकी ओर चली।

[illegible]—माँ, मेरी प्यारी माँ, न जा गाँवकी ओर न। आग जल रही है, हाहाकार मचा हुआ है, इन दिग्विजयाने मनुजकी [illegible] टिगनी कर दी।

माँ—तू अपनी राह ले, बेटे, रणकी ओर जा, मैं [illegible] और अपने जले सपूतोंकी [illegible]। एक गाँव खड़ा न रहेगा, न [illegible]—[illegible] सेनाओंको आहार मिलेगा और न उन्हें [illegible]।

[धनुष-बाण लिये एक बूढ़ेका दल-बल सहित प्रवेश]

वृद्ध—शाबाश देवि! यौधेयोने गावोकी बस्ती कुछ आज नयी नही बसायी। सदियोसे उनके गाँव बसते और उजडते चले आ रहे है। आजादी का जीवन आरामका नही, शकाका है और जब-जब आजादीपर उसकी चीलोने झपट्टा मारा है उसके बाँकोको दर-दरकी धूल छाननी पडी है। सिन्धुमे पञ्चनद, पञ्चनदसे मरुभूमि और झाडखण्ड, और अब न जाने कहाँका दानापानी होगा।

माँ—इसी कारण खडे गाँवको छोड जाना पाप होगा। हमे मालवोकी राह जाना है, आर्जुनायनो सनकानीकोकी राह, अरट्टो अग्र-श्रेणियोकी राह। मौर्योकी चोटसे आजादोके दीवाने मालव अवन्ती जा बसे, हमारे भी उखडे पाँव कही रुकके ही रहेगे। जाओ, तुम अपनी राह जाओ, मेरे बेटेको भी साथ ले लो। विदा, बेटे, विदा!

बेटा—चला, माँ, रणमे मरकर अमर होने, क्योकि दिग्विजयी सम्राटोकी परम्परा आज़ाद जातियोको लीलकर रहेगी।

[माँ-बेटेका प्रस्थान]

वृद्ध—पहचाना नही मुझे उसने, निकल गया रावतका बेटा, रणमे जूझने। मालवो सनकानीकोकी राह गया वह, आयुधजीवी यौधेयोकी राह।

एक युवक—गुरुवर, शास्त्रकी जगह शस्त्र धारण करनेवाले ऋषिवरको भला सैनिक कैसे पहचाने? हम स्वय जो इस वेशमे अचानक देख लेते तो क्या पहचान पाते?

[यौधेयोके वृद्ध पुरोहितका प्रवेश]

पुरोहित—[वृद्धको पहचानकर]—अरे आप इस वेशमे!

वृद्ध—राष्ट्रकी रक्षामे यही वेश वाछनीय है। परशुरामको विवश होकर ही परशु धारण करना पडा था।

पुरोहित—सम्राटोंकी महत्त्वाकांक्षा जो न करा दे !

वृद्ध—वे सम्राट् मिट गये जिन्होंने दिग्विजयके बाद कहा—"भारत मेरा है।" आज राघव राम और उनके साम्राज्यकी स्मृति भी [illegible] हो चली है, समुद्रगुप्त जिस यश कायाका निर्माण राष्ट्रोंको [illegible] आज करने चला है वह भी कल धूमिल हो जायगी। [illegible] धिक्कार है ! साम्राज्यको धिक्कार है।

[प्रस्थान]

आठवाँ दृश्य

वाचक—

चतुस्समुद्रान्तविलोलमेखला
सुमेरुकैलासबृहत्पयोधराम् ।
वनान्तवान्तस्फुटपुष्पहासिनी
कुमारगुप्ते पृथिवी प्रशासति ॥

चारों समुद्र जिसकी मेखला है, सुमेरु और कैलास जिसके पयोधर हैं, खिले फूलोंसे भरे वनान्त और [illegible] रहती है, ऐसी पृथ्वीपर जब सम्राट् कुमारगुप्तका शासन था—

—जब नर्मदा तीरके पुष्यमित्रोंने अपने [illegible] साम्राज्यको संकटमें डाल दिया था, गुप्तोंकी [illegible] कर दी थी। विलासी सम्राट्का [illegible] छायामें पड़ने लगा था। पुष्यमित्रोंके [illegible] स्कन्दगुप्त [illegible] तभी—

स्कन्दगुप्त—यह युद्ध नहीं हो सकता, आर्य।

गोविन्दगुप्त—सच, नही हो सकनेका यह युद्ध। धार्मिकोका धर्म न ही युद्ध होता है ?

स्कन्दगुप्त—जहाँ बाल-वृद्ध, नर-नारी अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए सन्नद्ध है, जहाँ राष्ट्रका समूचा धन राष्ट्रकी रक्षाके लिए जन-जन लुटा रहा है, वहाँ युद्ध पाप है। आर्य, वे अपनी आजादीकी रक्षाके लिए लड रहे है, हम अपने साम्राज्यकी सीमाएँ बढानेके लिए। धिक्कार है इस अर्थलोलुपताको! कुन्तल!

कुन्तल—कुमार।

स्कन्द०—लाओ वन्दीको।

कुन्तल—जो आज्ञा, देव।

[प्रस्थान और वन्दीके साथ प्रवेश]

स्कन्द—सैनिको, छोड दो वन्दीको।

वन्दी—यह क्या, युवराज ? शत्रुपर यह अनुग्रह कैसा, जब पुष्यमित्रोने साम्राज्यको खतरेमे डाल दिया है ? गुप्तोने निवृत्तिका मार्ग कबसे अपनाया ?

स्कन्द—परिहास न करो, गणसेनापति। तुम्हारी मुक्तिका कारण मै हूँ, साम्राज्यका सचिवालय नही, सम्राट्की अभियान-नीति नही।

ग०से०—पर इससे क्या यह समझूँ कि दिवगत समुद्रगुप्तकी नीतिसे युवराजने अवकाश ले लिया ?

स्कन्द०—नही, सेनापति, सो नही। सम्भवत उस नीतिका पालन राजाओ, आक्रान्ताओके विरुद्ध मुझे आगे भी करना ही होगा। पर लगता है पुष्यमित्रोसे युद्ध अपनेसे युद्ध करना है, आत्मघात है। जाओ, तुम अपनी सीमाओको सम्हालो, साम्राज्य दक्षिणमे नर्मदा पार पग न धरेगा।

वाचिका—और एक दिन वलिदानोकी इस भूमिपर, वलिदानो भरे आन्दोलनोके वाद, रक्तमे युग-युग नहाई दिल्लीमे अपनी लोकसभाने जन्म लिया। १५ अगस्त सन् १९४७ की रात भारतने नया जन्म लिया, हमारा गणतन्त्र अहिंसा और शान्तिके सवल लिये जनतन्त्रोके राजमार्गपर खड़ा हुआ—

न राज्य कामये राजन् न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दु:खतप्ताना प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

o

नारी

अङ्क—१ । दृश्य—१

[आजसे प्राय बीस हजार साल पहले । कन्दराके द्वारपर नारी खडी है, लगभग नगी । क्रोधसे उसके नथुने फूल रहे है, सिरके बाल हवामे उड रहे हैं, वैसे ही नाक और बगलोके भी । शरीर रोमोसे भरा है । शिराव्यजित कन्धे और गठी भुजाएँ हिल रही है । एक पैर भूमिपर है दूसरा चट्टानपर टिका है । थोडी दूरपर दो युवा एक अधेड नरको नारीकी आज्ञासे पीट रहे हैं । चोटोसे भरा वह गिडगिडा रहा है । नारीका क्रोध शान्त नहीं होता ।]

नारी—और मार, मार इसे चीतल [मारकी आवाज], मार महिष, इन चोरको ।

[महिष लात-घूसोसे उसे मारता है ।]

नर—[गिडगिडाता-रोता] अब नही, अब न मार, जालिम । बस एक बार और छोड दे, एक बार ।

नारी—मार चिती, और मार, इस झूठेको । चोर कहीके ! मै शिकारको गई और यह मेरी दुश्मनकी मांदमे जा धँसा, यह चोर । दे इसे और ! आज जिन्दा न छोडूँगी । मैंने खुद इसे तालकी चट्टानोके पीछे मितासे चिमटते देखा था । लगा, चीतल, दो हाथ और इनके, रुक क्यो गया, पाजी ?

[मारनेकी आवाज]

नर—नही, नही, अब दया कर । दया कर, फिर कभी तेरी छाया नही छोडूँगा, मिनी ! बस एक बार और माफ कर दे, छोड दे । तेरे तलवोके काँटे चुनता दिन काट लूँगा । छोड दे ।

नारी—[चट्टानपरसे पाँव हटाते हुए] अच्छा, छोड दे चीतल। छोड दे महिप। एक वार फिर छोड देती हूँ। [छोड देते हैं] पर देख मुरल, अव फिर जो मैंने तुझे मिताके पास पाया तो वस याद रख, सुअरके साथ-साथ तुझे भी भून डालूँगी। जा, अव आँखोंके सामनेसे! [मुरल गिडगिडाता, लडखडाता, चोटसे व्याकुल चला जाता है]

नारी [चीतल और महिपसे] देखा, मेरा कोप! खबरदार जो कभी इसका तौर सीखा! उँगलियोमे एक नाखून नही रहने दूँगी।
[दोनो चुपचाप सिर झुका लेते हैं। नारी धीरे-धीरे उनके पास जाती है, हाथसे दोनोको परसती है, उनके थूथनोपर बारी-बारीसे अपना थूथन रखती है। उनकी पीठ ठोकती है। दोनो प्रसन्न चले जाते हैं।]

[प्रस्थान]

दृश्य २

[गुफाके द्वारपर आग जल रही है। जंगली जानवर आते हैं और लपटोके डरसे दूरसे ही झाँककर चले जाते हैं। चीतल और महिष थोडी-थोडी देरपर आगमे लकडी डाल दिया करते हैं। गुफामे एक ओर मिनी और मुरल एक दूसरेके पाशमे बँधे पडे है। दोनो हल्के-हल्के बात कर रहे है। दोनो रह-रहकर एक दूसरेको चाट लेते हैं।]

मिनी—मुरल, तू मुझसे नाराज है? दुखी है? [उसे चाटने लगती है]

मुरल—आज तूने मुझे बहुत मार लगवायी, मिनी। मेरा जोड-जोड फटा जा रहा है। जा, तू जा!

मिनी—फिर तू चोरी क्यो करता है ? क्यो उस हिरनमुँहीके पास जाता है ? क्यो उसे पीठपर चढाकर नाचता है ? उसे चाटता है ? अब ऐसा न करना, भला ?

मुरल—अब करूँगा तो तू जान छोडेगी ? आह ! [उच्छ्वास, दीर्घ उच्छ्वास]

मिनी—अच्छा यह क्या ? मिताकी याद भूल जा वरना देखता है न वे आगकी लपटे ? भूल गया दिनकी मार ?

मुरल—[कांप जाता है] नही, नही, यह मिताकी याद नही है मिनी। सच कहता हूँ मिनी।

मिनी—[आँखे तरेरकर] अच्छा, दे सबूत फिर इसका। उठ, निकल।

मुरल—[कॉपता हुआ] क्या करूँ ?

मिनी—उठा मशाल, उठा हथौडा। चला जा मितीकी गुफामे। तोड ला उसका सिर। मुझे उसका सिर चाहिए, जा।

मुरल—मिनी !

मिनी—[आँखें तरेरकर] जाता है या नही ? चीतल, महिष !

मुरल—[काँपता हुआ] जाता हूँ, जाता हूँ। [लडखडाता हुआ उठता है, एक हाथमे हथौडा दूसरेमे मशाल लेता है। चला जाता है।]

मिनी—[धीरे-धीरे] आदमीकी औलाद ! कायर !

[और चीतलको खीचकर गोदमे दुबका लेती है। महिष आग सम्हालता रहता है।]

अङ्क—२ । दृश्य १

[दस हजार साल बाद । जनका गाँव लूट चुका है । मर्द फरसोके घाट उतारे जा चुके है । बूढे आगकी लपटोके सुपुर्द हो चुके है । औरतें एक ओर बँधी पडी हैं । विजेता सरदार अपने योद्धाओके साथ आता है, नारियोको बाँटता है ।]

सरदार—आह, क्या रूप है ! भेजो इसे मेरे कोटमे, और उसे भी । और वह उस कुन्तल केशिनीको भी, जैसे दूधसे नहाकर निकली है ! और देख, कुरग, उसे तू ले ले, उस मृगाक्षीको । देखता है न, उसकी भवोका वक ?

कुरग—सौभाग्य, सरदार !

सरदार—गयन्द !

गयन्द—स्वामी !

सरदार—इधर क्या देखता है, उधर देख, उस पिगलाको । ले ले, और देख, जोगाकर रखना, मन लपका जा रहा है ।

गयन्द—ले लें, सरदार ! कोटमे इसे भी रख ले ।

सरदार—नही, तेरी जीतकी उपहार है, वहाँ घमासानके बीच देखा था, तेरी भुजासे लटक गई थी । तुझे वर लिया है उसने ।

गयन्द—अच्छा, स्वामी, जोगाकर रखूँगा, जब चाहो, पधारो ।

दृश्य २

सरदार—यह कपिला किसकी है ?

कोरक—मेरी, पिता । आपने ही तो दी थी ।

सरदार—बडे भाग्यवान् हो ! उसकी आँखोमे तो जैसे सिन्धु उमडा पडता है । आज रात उसे मेरे द्वार भेजना ।

कोरक—जैसी आज्ञा, पिता ।

सरदार—और वह कौन है, वह कजरारी आंखो वाली, जो केशोका जल निचोड रही है ?

कोरक—वह भाईकी है ।

सरदार—तुन्दिलकी ? [हँसता है] तुन्दिलका उस तन्वीको क्या सुख ? कहना उससे, कल वही मेरी परिचर्या करेगी ।

[दोनोका प्रस्थान]

[कपिला और कजरीका प्रवेश, चरखा कातते हुए]

कपिला—सुना, बहिन ?

कजरी—क्या, बहिन ?

कपिला—आज मुझे पिताके द्वार जाना है ।

कजरी—सुना । कल मुझे भी वही सेवा करनी है ।

कपिला—यह नारीका जीवन क्या है, सखि ?

कजरी—हाँ, बहिन, मनचीतेका साया भी हट जाता है । मेरा तुन्दिल तो तडप जायेगा ।

कपिला—मेरा कोरक रो रहा था, सखि । पर कोई उपाय नही है । पुरुषकी इच्छापर ही अपना जीवन निर्भर करता है । उसकी सेवा और सन्तान !

कजरी—[आंखें पोछती हुई] देखे, अब वहाँसे लौट भी पाते है या नही !

अंक—३ । दृश्य—१

[चार हजार साल पहले । वैदिक कालमे । विवाह प्रथाके पूर्व । ऋषि पढा रहा है, ब्रह्मचारी पढ रहे है । ऋषिपत्नी सोमवल्ली कूट रही है । दूसरा ऋषि आता है, ऋषिपत्नीका हाथ पकड एक ओर चला जाता है । ऋषिकुमार तमतमाकर खडा हो जाता है ।]

कुमार—अनाचार, प्रभो !

ऋषि—बैठो। बैठ जाओ। मन्त्र कहो।

कुमार—आश्रममे पाप प्रगटा है, पिता। मन्त्र अपावन हो जायगा।

ऋषि—कैसा पाप, कुमार ? अपचार कैसा ?

कुमार—पाप, पिता, अपनी इन्ही आँखो देखा था, यही मुनि आया था और माता हँसती हुई इसके साथ चली गयी थी ! मैंने पीछा किया था। पिता, सब अपनी आँखो देखा था।

ऋषि—मूर्ख, वह पाप नही, सनातन नियम है। नारी क्षेत्र है, क्षेत्र एकका नही होता, सार्वजनिक होता है, गोचर भूमिकी तरह।

कुमार—नही, पिता। यह नियम चाहे कितना भी सनातन क्यो न हो, टूटेगा। मै इसे तोडकर रहूँगा। इस पशुजीवनका समाधान बस एक क्रिया है—विवाह, आवाह ! चला अब इसके प्रचारके हित। रखो तुम अपना यह मन्त्र-याग। विदा !

[मस्तक झुकाकर चल देता है]

दृश्य—२

[इन्द्राणी और वाक् बैठी बातें कर रही हैं। शालीन शचीके किरीटसे उसकी कुंतल-कचराशि निकलकर दोनो ओर लहरा रही है। रह-रहकर उसके स्वर्ण कुण्डल केशोके बीच दमक जाते हैं। वाक्‌की कुटिल भँवें उसके संयत सौंदर्यमे जमे लुब्धक भौंरोको सचेत कर रही हैं।]

इन्द्राणी—अहं केतुरहं मूर्धा अहमुग्राविवाचिनी !—आज मेरी ध्वजा फहरा रही है, मेरी आज्ञा अनुल्लघनीय है, मेरी गरिमाकी देवगण सौगन्ध खाते है !

वाक्—पौलोमीकी शक्ति निस्सन्देह प्रबल है। इन्द्रका पौरुष महान् है।

इन्द्राणी—मेरी कन्याएँ रानियाँ है, मेरे पुत्र शक्तिमान है। मै अजेय हूँ। इन्द्रका पौरुष मेरी हविसे शक्ति पाता है। मेरी सपत्नियाँ घ्वस्त हो चुकी है।

वाक्—सपत्नियाँ! वही तो नारीकी विडम्बना है। वरना कैकेयीने रथकी धुरी धारण की है, मुद्गलाने लौहकी राने धारण की है। पर रथ वह पतिका है, मैदान वह स्वामीका है।

इन्द्राणी—जनेऊ धारणकर यज्ञमे नारी बैठती है, मै स्वय हविमे भाग पाती हूँ, यज्ञका सचालन करती हूँ।

वाक्—नही, पर अर्द्धाङ्गिनी रूपमे, पतिके अभावमे नही, अपने अधिकारसे नही। इन्द्रको हटा दो, अपने गौरवको गुनो फिर!

[इन्द्राणीका क्षुब्ध प्रस्थान। सूर्याका प्रवेश]

वाक्—स्वागत, सूर्ये! सोमकी अकशायिनि, पधारो!

सूर्या—अभिवादन, वागम्भृणि। आई नही यज्ञमे!

वाक्—नही आ सकी, सूर्ये, उस निरर्थक यज्ञमे!

सूर्या—विवाह-यज्ञ निरर्थक, देवि? सुना नही वह आशीर्वचन?

वाक्—सुना वह पुरोधाका आशीर्वचन, सूर्ये, सुना—ससुरकी सम्राज्ञी बन, सासकी सम्राज्ञी बन, देवरो-नन्दोकी सम्राज्ञी बन, दोपायो-चौपायोकी सम्राज्ञी बन, उपस्थित जनोको आदेश कर! सुना, सब सुना। इन सबकी सम्राज्ञीके ऊपर सम्राट्का अकुश है, अनुल्लघनीय अनुशासन। भोगो उसे, सूर्ये, अविकल भोगो!

सूर्या—मुनिकन्ये, व्यग न करो। कौमार्यको कुण्ठित न करो। कोरककी परिणति कोष खोलकर मकरन्द लुटा देनेमें है!

वाक्—सही, पर उसकी शालीनता अपने सौरभका स्वामी दूसरेको बना देनेमे भी नही है। मै तो अपनी सत्ताकी पोषिणी हूँ—अह रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवाऊ—रुद्रका धनुष धारण करती हूँ कि ब्रह्मद्वेषियोका दलन कर सकूँ। सेनाओको रणभूमिमे खीच

लाती हूँ कि ममर्दमे दिशाएँ काँप उठे। सूर्यको आकाशकी मूर्धा पर घसीट लाती हूँ कि धरा तप उठे, हिम गल जाय, पक सूख जाय, जीवन जग उठे !

सूर्या—लहको, एकाकिनि, डहो, अपने ही गौरवकी आँचमे ! चली मैं तो सोमकी शीतल छायामे, उसकी कौमुदी बन अन्तरिक्षमे उसका विस्तार करने। विदा !

[प्रस्थान। वाक् व्यंगभरी दृष्टिसे जाती हुई सूर्याको चुपचाप देखती रहती है।]

दृश्य—२

[उत्तर वैदिक काल। ब्राह्मण-उपनिषदोका जीवन। मिथिलामे विदेह जनककी राजसभा। ज्ञान-सबधी तर्क हो रहा है। सहस्र गौएँ सोनेसे मण्डित सींगो वाली विजेता ऋषिके लिए खडी झूम रही हैं। सब ऋषि याज्ञवल्क्यसे परास्त हो चुके हैं, केवल गार्गी जूझ रही है।]

गार्गी—मैं आपसे दो प्रश्न पूछती हूँ, भगवन्। यदि आपने मेरे इन प्रश्नोंके समुचित उत्तर दे दिये तो आपको इस ब्रह्मलोकमे कोई जीत न सकेगा।

याज्ञ०—पूछ गार्गी, वाचक्नवी पूछ।

गार्गी—यह जो ऊपर द्यौ मे, यह नीचे जो पृथ्वीपर, और यह जो द्यावा पृथ्वी दोनोके बीच हुआ है (स्थित रहा है), है, या होनेवाला है वह किसमें ओत-प्रोत है ?

याज्ञ०—यह जो ऊपर द्यौ मे, गार्गी, यह नीचे जो पृथिवीपर, और यह जो द्यावा पृथ्वी दोनोके बीच हुआ है, है, या होनेवाला है, वह आकाशमे ओत-प्रोत है।

गार्गी—नमस्कार है तुमको, याज्ञवल्क्य, अब यह दूसरा प्रश्न करती हूँ । धारण करो, सम्हालो, उत्तर दो ।

याज्ञ०—पूछो, गार्गी, अपना प्रश्न ।

[गार्गी पूछती है, याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं ।]

गार्गी—ब्राह्मणो, याज्ञवल्क्यको नमस्कार करो, वही हम सबमे बहुमान्य है । छोडो उसे, वही इन ब्रह्मोद्यमे विजयी है ।

[प्रस्थान]

दृश्य ४

[आश्रम । कुलपतिके समक्ष जाबाल करमे समिधा लिये ऋषि-कुमारोके बीच खडा है ।]

कुलपति—क्या नाम है ? क्या वर्ण है, कुमार, तुम्हारा ? क्या गोत्र है ?

जाबाल—जाबाल, भगवान् 'समित्पाणी' होनेकी आज्ञा करे, विदग्ध-मार्गकी दीक्षा दे ।

कुल०—वर्ण बोलो, कुमार, गोत्र बोलो ।

जाबाल—नही जानता भगवन् ! पर समित्पाणी होनेकी भगवान् आज्ञा करे ।

कुल०—कैसे समित्पाणी होनेकी आज्ञा करूँ, कैसे विदग्ध-मार्गमे दीक्षित करूँ ? ब्रह्म-क्षत्र तक ही तो उनकी परिधि है । कैसे जानूँ, तू ब्राह्मण है, क्षत्रिय है, इनसे परे है ? जा, जननीसे पूछ ।

[जाबाल नतमस्तक हो चला जाता है । जननीके चरण छू पूछता है ।]

जाबाल—माँ, मेरा वर्ण क्या है, गोत्र क्या है, मेरा पिता कौन है ? इनको बिना जाने कुलपति समित्पाणी होनेकी आज्ञा कैसे करे, विदग्ध-मार्गकी दीक्षा कैसे दे ?

माता—पुत्रक, कैसे बताऊँ ? मैं स्वय भी तो नही जानती । तब मैं कुमारी थी, पिताके अतिथिसकुल परिवारमे सत्कारार्थ प्रयुक्त एकमात्र दुहिता ! स्मरण नहीं उस रात किस महानुभावकी छाया इस क्षेत्रपर पडी, जिसके पुण्यके प्रताप स्वरूप तुम उदय हुए !

[जावाल नतमस्तक हो चुपचाप कुलपतिके निकट चला जाता है ।]

जावाल—भगवन्, जननी मेरे पिताको नही जानती, मेरा वर्ण नही जानती, गोत्र नही जानती । पूछा तो उसने कहा—'पुत्रक, कैसे बताऊँ ? मैं स्वय भी तो नही जानती । तब मैं कुमारी थी, पिताके अतिथिसकुल परिवारमें सत्कारार्थ प्रयुक्त एक मात्र दुहिता ! स्मरण नही उस रात किस महानुभावकी छाया इस क्षेत्रपर पडी, जिसके पुण्यके प्रताप स्वरूप तुम उदय हुए !'

कुल०—तुमने माताके सत्य वचन ज्योके त्यो कहे, जावाल, निस्सन्देह ब्राह्मण हो तुम । 'सत्यकाम' तुम्हे आजसे कहूँगा । समित्पाणी हो, सत्यकाम जावाल, विदग्ध-मार्गपर आरूढ हो, आओ !

[समिधामे अग्नि लगा देता है । प्रस्थान]

अंक–४ । दृश्य–१

[तीन सौ साल बाद । सावत्थीके जेतवन विहारमे तथागत बरसात बिता रहे हे । आस-पास आनन्द आदि शिष्य बैठे हैं, सामने भिक्षु-सघ, गृहस्थ-उपासकका उपदेश समाप्त होता है । द्वारका भिक्षु आकर आनन्दके कानमें कुछ कहता है । आनन्द उसके साथ बाहर चला जाता है । द्वारपर बुद्धकी मौसी प्रजापती और आनन्द ।]

आनन्द—प्रसन्न हुआ, देवि । धन्य जो दर्शन पाये !

प्रजा०—निवेदन करो, भन्ते ! आज संघमे प्रवेश करके ही रहूँगी ।

आनन्द—निवेदन करता हूँ, माता, अभी करता हूँ सदा करता रहा हूँ, पर तथागत उदासीन हैं, नारीको प्रव्रज्या नही देगे ।

प्रजा०—आज मैं यहाँसे नही हिलनेकी, भन्ते । वर्षा-आँधी झेलती आयी हूँ, कपिलवस्तुसे । निवेदन करो—प्रजापती आज यही प्राणत्याग करेगी, सुगतने यदि अनुकम्पा न की, संघमे दीक्षित नही किया । निवेदन करो ।

आनन्द—अभी, देवि, अभी निवेदन करता हूँ ।

[प्रस्थान, बुद्धके निकट जाकर चुपचाप खड़ा हो जाता है ।]

बुद्ध—बोलो, आनन्द, कुछ कहना इष्ट है ?

आनन्द—सुगत प्रसन्न हो !

बुद्ध—बोलो, आनन्द, नारीका पक्ष लेकर आये हो ।

आनन्द—सत्य, सुगत प्रसन्न हो !

बुद्ध—नारी, आनन्द, जलमे तैरती मछलीकी भाँति अज्ञेय है । नारी दस्यु-सी प्रवञ्चिका है, कला-कुशला । सत्यसे वह दूर है । उसके लिए सत्य मिथ्या है, आनन्द, मिथ्या सत्य है ।

आनन्द—पर यह तो महाप्रजापती है जो संघकी कामना करती है, जननी है, नारियोमे देवी है, सुगतकी पालिका । प्रसन्न हो सुगत !

बुद्ध—सदासे महाप्रजापतीका पक्ष लेते रहे हो, आनन्द ।

आनन्द—सुगत अनुकम्पा करें ।

[बुद्ध चुप है । आनन्द जानता है, बुद्ध स्वीकृति मौनसे देते हैं । प्रसन्न हो उठता है ।]

आनन्द—धन्य, सुगत, धन्य ! सुगत मौन है, सुगत प्रसन्न है !

बुद्ध—किन्तु सुनो, आनन्द—जैसे धानके खेतमें जब रोग फूट पड़ता है तब धानके खेतकी शक्ति नष्ट हो जाती है, वैसे ही, आनन्द, जब

नारियाँ सद्धर्ममे दीक्षित होगी, प्रव्रजित होकर सघमे प्रवेश करेगी तव पवित्र जीवन क्षीण हो जायेगा। तथागतके चलाये सद्धर्म और सघमे यदि नारी दीक्षित न होती, तव, आनन्द सद्धर्म सहस्र वर्ष तक जीवित रहता, किन्तु, आनन्द अब सघ दीर्घकाल तक जीवित न रह सकेगा, सद्धर्म केवल पाँच सौ वर्ष चलेगा।

[मौन । आनन्दका प्रस्थान]

दृश्य—२

१ धर्माचार्य—वर्ण-धर्म मिट गया, मनुकी व्यवस्था गतप्राय है। नया विधान होगा, मनुके अनुकूल ही।

२ धर्माचार्य—करो, मुनि, निश्चय करो वरना आर्यभूमि म्लेच्छोंसे आक्रान्त है। यवनोंने पार्थिवोंको नष्ट कर दिया है, प्रान्तोंको विच्छिन्न। शूद्र ब्राह्मण है, ब्राह्मण शूद्र। वर्ण-धर्म मिट चला।

३-४ धर्माचार्य [एक साथ]—सत्य है, सत्य!

१ धर्माचार्य—बालविवाहकी मर्यादा स्थापित करो। पिता अपनी अनेक कन्याओंका पत्नी और पुत्रोंके साथ इस विप्लवमें रक्षा न कर सकेगा, केवल पति उसकी रक्षा कर सकेगा, इसमें कन्याओंको शीघ्रातिशीघ्र पत्नी होने दो—अष्टवर्षा भवेद् गौरी—कल्याण तभी होगा। बोलो, मान्य है?

सभी [एक साथ]—मान्य है, आचार्य, मान्य है!

१ धर्माचार्य—बोलो, ब्राह्मण सम्राट् पुष्यमित्रकी जय!

सभी [एक साथ]—जय! सम्राट् पुष्यमित्रकी जय!

[प्रस्थान] पटाक्षेप

अंक-५ । दृश्य-१

[पाँच सौ वर्ष बाद । गुप्तकाल । पाटलिपुत्रका प्रासाद । ध्रुव-स्वामिनी प्रसाधन कर रही है, दो दासियाँ उसकी सहायता कर रही हैं, तीसरी वीणाके स्वर लहरा रही है, एक ओर रगासे भरी कटोरियाँ पडी है ।]

ध्रुव०—वर्तिकाका रग तनिक हल्की करले, मणि, आलता कुछ अधिक चढ गई है । होठ मुझे गाढे लाल नही रुचते ।

मणि—कर ली है, देवि । लोध्र वरना, जानती हूँ, दब जायेगा ।

ध्रुव०—और माले ! तूलिका तनिक दवा कर चला । रोगटे खडे हुए जा रहे है । अग-अग सिहर उठा ।

[माला स्तनोपर राग-रेखाएँ खींच देती है, लाल रेखाओके भीतर चदनकी श्वेत रेखाऐं, वृत्ताकार, निरन्तर छोटे होते आते रेखावृत्त, बीचमे शिखरपर एकाकी धवल विंदु ।]

ध्रुव०—हाँ, तनिक हल्के, मणि । पर, देख अधरकी इस खडी अर्ध रेखाको तनिक और गहरी करदे । हाँ, देख अब चिबुककूपसे लहराती विशेषककी टहनियाँ अधरोकी ललाईसे और दमक उठी हैं । ललाटकी भक्ति-रेखाएँ जहाँ कानोके निकट उन टहनियोको छूती है वही नयनोकी कजरारी रेखा समाप्त होती है । बस ठीक ।

माला—कोमल ! कोमल !

[मस्तकपर स्वर्ण थालमे फूलोके गजरे और हार धरे वामन कोमलका प्रवेश ।]

कोमल—आया, माले, आया ।

[ध्रुवस्वामिनीके निकट आकर खडा हो जाता है । माला और मणि रानीका पुष्प-मण्डन करने लगती हैं । कलाइयोको,

कटिको, चूडाको, गजरोमे सजा देती हैं। गलेमे विपुल मोतियो की एकावली है, तनपर हसचिह्नित दुकूल फव उठता है।]

मणि—सौभाग्य चमके, देवि !

माला—क्लीवकी छाया मिटे !

मणि—पुनर्भूका चन्द्र चमके !

[ध्रुवस्वामिनी राजगतिमे द्वारकी ओर बढती है। वीणावादिनी गाती है—]

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी,
मध्ये क्षामा चकितहरिणी प्रेक्षणा निम्ननाभि ।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्या
या तत्र स्याद् युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातु ॥

अंक ६

[राजपूत काल। चित्तौडगढ। अलाउद्दीन परकोटेके नीचे है। राजपूत केसरिया धारण कर चुके हैं। पद्मिनी सरदारोंकी पत्नियोसे घिरी हैं। दरबारका दूत पूछने आया है, पद्मिनी क्या करेंगी ? राजपूतनियां क्या करेंगी ?]

पद्मिनी—जौहर, दूत, दरबारसे कह दो, जौहर होगा। केसरिया छायामें डोलने वाली ललनाओंने पुष्पशय्याकी कामना कब की ? चन्दनकी राग-रेखाएँ जीवनमें उनका प्रसाधन करती है, चन्दनकी लकडी चितापर उनका अन्त्य मण्डन होगी।

दूत—धन्य, रानी, धन्य !

पद्मिनी—[एकत्र राजपूतनियोंसे] सती प्राचीन प्रथा है मानिनी नारियो-की। राजपूतनियोंने उस एकाकी मृत्युको सामूहिक बना दिया है।

जौहरका बल। बोलो, स्वीकार है तुम्हे वह बलिदान ?

सैकडो पात्र—[एक साथ]—स्वीकार है!

पद्मिनी—देखो—कोई तुम्हे चितारोहणके लिए विवश नही करता। जो इस यज्ञके लिए तैयार न हो वह निर्भय चली जाय।

[सब चुप है। एक आवाज नही होती।]

[सब जाती है।]

पद्मिनी—कान्ता, चन्दनकी चिता चुनवा दे, किलेकी बुर्जियोके नीचे मैदानमे। सतियोकी राखसे उन बुर्जियोके शालीन शिखर पवित्र होगे। चलो!

[सब जाती है।]

दृश्य २

[मेवाडका कोट। राजप्रासादका एक कोना। मीरा करताल लिये खडी है। राणा कुपित है।]

राणा—चली जाओ, रानी, जब तुम कुल-धर्म नही निवाह सकती!

मीरा—चली जाऊँगी, राणा। निश्चय चली जाऊँगी। माता-पिताने तुम्हे तन दान कर दिया। ले लो मेरा यह तन। भोगो इसे, चाहो, नष्ट कर दो, तुम्हारा है। पर मन तो मेरा है, राणा। उसे कौन तुम्हे दे सका? वह तो सदा मेरा रहा है, मेरे गिरिधर गोपालका। वह तुम्हे कैसे दे दूँ? एक बार उसे गिरिधरको देकर फिर तुम्हे कैसे दूँ?

राणा—[काँपती आवाजमे] जाओ, चली जाओ! राजसे बाहर चली जाओ!

मीरा—चली, राणा, चली राजमे बाहर तुम्हारे। नन्दलालके राजकी वासिनी हूँ। चली उसके कोटकी ओर, वृन्दावन—

वसो मेरे नैनन मे नदलाल।
मोहनि मूरति, साँवरि सूरति, नैना बने बिसाल॥
मोर मुकट मकराकृत कुडल, अरुन तिलक दिये भाल।
अधर सुधारस मुरली राजत, उर बैजती माल॥
छुद्र घंटिका कटितट सोभित, नूपुर शब्द रसाल।
मीरा प्रभु सतन सुखदाई भक्त बछल गोपाल॥

[आवाज़ दूर हटती चली जाती है]

अक ७ / दृश्य १

[अंग्रेज़ी राजका आरम्भ। चिता धधक रही। है। पतिका शव चितापर जल रहा है। विधवा चितामे उतर भागती है। लोग उसे चिताकी ओर खींच रहे हैं, वह सती होना नहीं चाहती।]

विधवा—छोड दो! छोड दो मुझे, नर-पिशाचो! अभी मैंने दुनियाका कोई सुख न जाना। छोड दो, मुझे ज़िन्दा आगमे न जलाओ!

लोग—नीच! कुल्टा! कौन-सी कामना मनमें छिपाये जीना चाहती है? जब पति ही नही रहा तब जीकर कौन-सा सुख लोटेगी? पहले पापसे विधवा हुई, अब तो सती होकर अपनी भावी बना!

विधवा—अरे तुम लोग आगमे जलकर अपना भावी बनाओ। नहीं चाहिए मुझे चिता पारकी भावी। कोई बचाओ! बचाओ मुझे इन नर-पिशाचोंसे!

[सहसा सरकारी रिसाला आ जाता है, और विधवाकी सती होनेसे रक्षा होती है।]

दृश्य २

[मिट्टीका घर। युवती विधवा। मैला-कुचैला वस्त्र पहने, पर रूपकी प्रतिमा।]

विधवा—कितना कठिन है जीवन। इससे अच्छा तो मर जाना ही रहता। सती हो गयी होती तो कमसे कम नाम-जस तो मिलता। पर मर कर नाम-जस ही कौन भोगता ?

साधुनी—विधवाका जीवन बडे अभागका है, सच, बडा कठिन है।

विधवा—समाजके ठेकेदार अस्मतपर नज़र डालते है। घरवाले चाहते है कि कही चली जाय, कही मुँह काला करले।

साधुनी—मनको सम्हालो, मनमे साहस भरो !

विधवा—कैसे सम्हालूं, मनको ? कैसे साहस भरूँ ? सभी ओर शत्रु है। आहार तक नही मिल पाता।

साधुनी—प्रधानजीके पास गयी थी ?

विधवा—चूल्हेमे जाय तुम्हारा प्रधान। मतलब भरी आँखोसे देखता है नीच ! रोज़ लेक्चर फटकारता है—जहाँ नारियोकी पूजा होती है वहाँ देवता रमते है ! उसके देवता भी वैसे ही होगे।

[भारतीय नारी सभाकी मत्राणीका प्रवेश।]

मत्राणी—कुन्ती किसका नाम है ?

विधवा—मेरा। [उठकर खडी हो जाती है]

मत्राणी—तुमने ही अभी 'अर्जी' भेजी थी ?

विधवा—हाँ, मैने ही।

मत्राणी—काम इस तरह नही बननेका। आन्दोलन करना होगा। अपने अधिकारोके लिए लडना होगा।

विधवा—लडूंगी। पर अकेली लडूंगी भी कैसे ? सब तो दुश्मन ही है।

मंत्राणी—नही, मित्रोकी कमी नही है। सत्यका सहायक सत्य स्वय होता है। अपनी आत्माका उद्धार अपने आप करना होगा। वैसे सैंकडो-हजारो विधवाओ, उपेक्षितो, दलितोका परिवार तुम्हारे साथ हैं। चलो, उनमे शामिल हो। अपना अधिकार लाभ करो।

[दोनो चली जाती हैं।]

दृश्य ३

नेता—मै कहता हूँ, शान्तिसे काम लो, आन्दोलनसे कुछ न होगा।

मंत्राणी—मै नारी-समाजकी ओरसे आपको दोषी ठहराती हूँ, जो हमारे प्रतिनिधि होकर हमारी पेशवाई नही करते।

नेता—क्या तुम्हे मत देनेका अधिकार हमने नही दिया है? तुम धारा-सभाओ के लिए नही खडी हो सकती? सरकारकी मत्राणी नही हो सकती?

मत्राणी—यह सब छलावा है। मै एम. ए हूँ, हजारोमे बोलती हूँ, पर अपने पुत्रकी अभिभावक (गार्जियन) तक नही हो सकती! यह कैसा अधिकार है? जब निरक्षर पिता अभिभावक हो सकता है? नही, नही, राजनीतिक अधिकारका कोई अर्थ नही होता जब तक कि आर्थिक स्वतन्त्रता न हो। ना, हम सब बन्धनमे है। भला हिन्दू कोड बिल क्यो नही पास कराते?

नेता—हिन्दू कोड बिल कोई अच्छी चीज नही है। तुम उसे समझती नही। हिन्दू परिवार बिखर जायेगा।

मत्राणी—उसे क्या समाजके शत्रुओने खडा किया है? उसकी योजना बनानेवाले क्या हिन्दू नही है? उनके क्या बेटियाँ नही है? केवल बेटे ही है? और भला हिन्दू-परिवार क्या चिरकालसे एक है? बिखरता नही आया है? यह कैसा ढोग है!

नेता—देखो, हिन्दू कोड विलसे वाहरका आदमी घरमे पेठ आयेगा । वात-को समझो ।

मत्राणी—उसका डर क्या है ? सम्पत्तिका बँटवारा ही तो होगा । उसके विना रहते बँटवारा क्या नही होता ? अव मान लो दो-से-तीन हो जायँगे । और अलग हो जानेपर मित्र-शत्रु कैसे ? जैसे दो भाई अलग-अलग वैसे ही दो भाई और एक वहिन तीनो अलग-अलग । अव यह फरेव रहने दो । नैतिकताकी आडमे शिकार न खेलो । खैर, तुम अपाहिजोसे अपना काम न वनेगा । चली, देशकी जनताके सामने अपनी माँग रखने । वही निर्णय करेगी । मुवारक तुम्हे तुम्हारी नेतागिरी ।

[चली जाती है ।]

दृश्य ४

[राष्ट्र-सघकी मानवीयता समितिमे । राष्ट्र-सघकी अध्यक्ष नारी बैठी है । नारी वोल रही है ।]

नारी—हमे हमारा नारीत्व चाहिए । हम 'देवी' नही होना चाहते । हमे पूजाकी वस्तु होनेसे नफरत है । हम चाहते है पुरुषका वास्तविक अर्द्धाङ्ग होना । उसके कन्धेसे कन्धा मिलाकर मानवीय समस्याओको सुलझा सकनेका अधिकार, वस ! हम इन्सान है, इन्सानियतसे वढकर धरापर कोई वस्तु नही । हम इन्सानियतके दावेदार है । हमे राष्ट्र-सघ इन्सान वननेमे सहायता करे ।

अध्यक्ष—[राष्ट्र-संघ नर-नारीका भेद नही करेगा, जैसे धर्म-धर्ममें, जन-जनमें वह भेद नही करता। इन्सानके लिए इन्सानियतकी विरासत बख्शना ही उसकी एकमात्र कामना है। इन्सानको उसका हक हासिल हो!

[पटाक्षेप]

शाही मजूर

वाचक—फरगनाकी हरी घाटी तैमूरने जीतकर अपने वशजोकी विरासत कर दी थी। परन्तु तैमूरिया खानदानके पिछले बादशाह उसे सम्हाल न सके। वह उनके हाथसे निकल गया। बाबरने बार बार समरकन्दकी सल्तनत जीती और खोयी और अन्तमे उसने काबुल और हिन्द जीत वहाँ डेरा डाला। फिर भी मरते दम फरगना जीतनेकी उसकी हविस न मिटी। उसे वह अपनी औलादकी रगोमे डालता गया और मुगलिया खानदानके, हुमायूँसे शाहजहाँ तक, एकके बाद एक, सभी बादशाह वखाँ [**वक्षु, वक्षाव, आमू**] की केसरकी क्यारियो वाली हरी-भरी घाटी बलखको जीतनेके निरन्तर प्रयास करते रहे। शाहजहाँने भी जीतनेकी कोशिश की। बीस करोड रुपये उन युद्धोमे खर्च किये। कभी एक शाहजादेको भेजा, कभी दूसरेको। एक बार जब उसने औरगजेबको वहाँ भेजा तब वही, बदख्शाकी घाटीमे —

वाचिका—सुन्दर इकहरा छरहरा वदन, गोरा-भभकता चेहरा, बाल पीछे लौटे हुए, चिकनी स्याह हल्की डाढी, चेहरा हाथोपर नीचे झुका हुआ, बाये हाथमे गोल सफेद छोटी टोपी जिसकी निचली चौडी सतहपर दाहिने हाथकी सुई तेज चलती जा रही है, अभिराम महीन डिजाइने कढती जा रही है। तीसरा पहर हो चला है, चारो ओर फौजका पहरा है, तीन दिनोसे लडाई रात-दिन चलती रही है, आज दोपहरको दुश्मन पीछे हटा है, दम लेनेको फुरसत मिली है, सेनापति कमर खोल आराम कर रहे है। फिर भी फौज मुस्तैद है। कातिल बेगोका क्या ठिकाना, कब मौतका पैगाम लिये आ पहुँचे। [**शिविरके द्वारमे किसीकी छाया डोलती है। सुई रोक टोपीसे नजर उठा खूबसूरत छरहरा नौजवान**

औरङ्गजेब उधर देखता है। गुलाम दोबारा मुजरा करता है]

औरंग०—[गम्भीर आवाजमे] क्या खबर है मंसूर ?

मसूर—हवाएँ खामोश है, मालिक। परिन्दे दीने पाकके पैगाम ले आलममे फैल गये है।

औरंग०—नही, मन्सूर, उसे छोड, रोजगारकी बात कर।

मसूर—बन्दा बाजारसे ही लौटा है, मेरे आका। [तीन रुपये सामने रख देता है।]

औरंग०—अच्छा तीन रुपये ! एक टोपीके लिए कुछ बुरे नही !

मसूर—[व्यग्यपूर्वक] कुछ बुरे नही, गरीबपरवर ! आलमपनाह, शाहोके शाह, दिल्लीके मुगलिया आफताब शाहजहाँके शाहजादेके लिए तीन रुपये खासी दौलत है !

[गुलामकी बूढी कांपती आवाज आसुओके साथ।]

[औरंगजेब हँसता है। टोपी नीचे रख देता है।]

औरग०—जी छोटा न कर, मसूर। मुझसे कोई बढकर नही। दिल्लीकी शानोशौकत इन टांकोके फन्दोमे झूलती है। मुझे किस बातकी कमी है जिससे तू बेचैन हो जाया करता है, भला ?

मंसूर—खुदा समझेगा, मेरे मालिक, इस कुर्बानीको, इस शाही फकीरीको !

[बूढेका गला और भी भर आता है।]

[illegible]ं०—बाजार दूर है, मसूर ?

[illegible]र—पास, बिलकुल पास, मालिक। फौजोकी आखिरी खाई पार, बस यहाँसे मील भरपर। और बाजार क्या है, दो चार गैमेदार दुकाने है जहाँ लोग बेचते भी है, खरीदते भी है।

[illegible]०—और खतरेमे डरते नही ?

मसूर—बेगके सिपाही उन्हे नही छूते, गरीबनेवाज। अपने लोगोसे भी उन्हे डर नही। घण्टे भरमे माल बेच-खरीद कर वे डेरा-डडा उठा लेते है। पर मै तो कहता हूँ [चुप हो जाता है।]

औरंग०—बेग इन्साफपसन्द हैं, मसूर। लोग सच कहते है।

मसूर—सही, मालिक, पर मेरी बात टाल दी बन्दानेवाजने।

[नौजवान निगाह सामने डालता है, दरवाजेकी ओर जहाँ दूर गर्द उड रही है।]

मसूर—मै तो कहता हूँ—[औरगजेबकी आँखे उसके चेहरेपर लौट पडती है।]

औरंग०—क्या कहते हो, मसूर? यह तो तुम सदा ही कहते आये हो। पर मुझे जो वह मजूर नही। मानता हूँ कि मेरा नाम ले लेनेसे सरहिन्दके बाजारोमे इन टोपियोकी कीमत हजारगुनी हो जायगी। शाहजादेकी बनाई टोपी पहननेका गुरूर किसे न होगा? पर ना, ऐसा नही होनेका। ऐसा ही होना होता तो क्या दकनके खजानेमे दौलतकी कमी थी जो उँगलियोमे सुई भोंकता, आँखोकी बेवक्त रोशनी छीनता? क्या दिल्लीमे, बगालमे, गुजरात और मालवामे यही नही हो रहा है? पर ना, औरगजेबके लिए वह हराम है। हलाल बस इस हाथकी कमाई है। [चेहरा फिर नीचे टोपीपर झुक जाता है। एक हाथसे टोपी उठा लेता है दूसरेसे सुई। सुई टपाटप चलने लगती है।]

[गुलाम लमहे भर खडा रहता है फिर सलाम करता चुपचाप शिविरसे बाहर निकल जाता है।]

[औरगजेबकी आवाज अभी शिविरमे गूँज ही रही है कि डंके-पर चोट पडती है। सैकडो डंके एक साथ बज उठते है। फौजी कमर कस हथियार सम्हालने लगते हैं। सवार अपने घोडोपर कूद पडते हैं। पर जब उनकी कतार आगे बढती है तब औरंगजेब उनके आगे होता है।]

वाचक—घमासान लडाई छिड जाती है। मलिक दुश्मनको दम देने-लेने वाला लडाका नही। तीन दिन तीन रात लडाई होती रही थी,

वह सहसा आ धमकता है। घंटे भर बाद ही मुगलोंकी सेना हिम्मत खो बैठती है। पर औरगजेब तनिक भी चिन्तित नही है। मगरिबकी नमाजको डूबता सूरज याद दिलाता है। घोड़ेसे कूद वह जानमाज बिछा लेता है और अब इतमीनानसे नमाज अदा कर रहा है। दुश्मनके सरदार उसे घेर मलिकको खबर देते है। मलिक उसके शान्त चेहरेको देख दंग रह जाता है।

मलिक—इस दीवानेसे लड़ना नादानी है। कोई उसे हाथ न लगाये। चलो, इसे कल जीत लेगे। नमाज अदा कर लेने दो। [औरगजेबकी पेशानीपर एक बल नही पड़ता। सबका प्रस्थान]

२

[औरङ्गजेब कलम चलाये जा रहा है। मुराद तेजीसे प्रवेश करता है]

औरग०—बस चार सतरे और, भाई। फिर काम खत्म है। [औरगजेब कुरानकी पोथी एक ओर रख देता है।]

मुराद—[चिढ़कर अधीरतासे] सामूगढ़ धर्मात नहीं है, बिरादर। बूँदीका छत्रसाल कसद करके आया है। राजपूती लश्कर सैलाबसा उमड़ती चली आ रही है। उसके सिरपर दारा है।

औरग०—[हँसकर] सिरपर दारा है। दारा क्या [illegible] न था, मुराद ? और राजपूती लश्कर क्या [illegible] नहीं है ? न सही जोधपुरकी, बूंदीकी ही सही। और मुराद, जैसे जसवन्तको देख लिया था, छत्रसालको भी देख लेगा।

मुराद—भाईजान, वक्त बिल्कुल नहीं है। [illegible] आ [illegible]। [illegible]

शरीफको किनारे कीजिए, आवेहयातके दो घूंट ले लीजिए जिसे पीकर आपका हाथी वो सामने झूम रहा है।

औरंग०—प्यारे मुराद, आवेहयातके घूंट तुम्हे मुबारक! आया मै भी। सतरे लिख गई है, और लो इनपर सुनहरी धूल भी पड गई। हाशिया कल बनेगा। औरंगजेब इसे बेचकर महीने भरके लिए गिरस्तीसे बेफिक्र हो जायगा। चलो, यह आया। [मुराद अब तक अपने हाथीपर बैठ चुका है।]

× × ×

[राजपूतोका भयानक हमला। गुजरात, मालवा और दकनकी फौजोमे भयानक भगदड। मुराद, कासिम, दौलत सबके हाथी अपनी ही सेना रौंद चलते है। औरङ्गजेब अकेला। दहशत कि वह खुद तो जान रहते मैदान न छोडेगा पर अगर हाथी भागा तो? महावतसे कहता है—]

औरंग०—मोहसिन, हाथी कही भाग न जाय। वह देख राजपूत रिसालो की नई बाढ! हाथीके पैरोमे कांटेदार जज़ीर डाल दे। और जजीर जमीनमे दफना दे। तब तक मै राजपूतोको तीरोपर लेता हूँ। मै नही हिलनेका। आज यह मैदान करबला होगा।

वाचक—लोहेसे लोहा बज चलता है। भागती दकनी सेना, भागते मुराद, कासिम और दौलत लौट पडते है। राजपूत रिसालोका जोर थम जाता है, छत्रसालका घोडा जमीनमे लोट रहा है, दाराका बेलगाम घोडा आगरेकी ओर भागा जा रहा है।

३

[औरंगजेब ताजपोशीसे लौटकर बैठा ही है]

मसूर—जहाँपनाह, आज गुलाम वह माँगता है जिसे माँगनेका उसे हक हासिल है।

औरंग०—माँग, मसूर, क्या लेगा? पर क्या तख्तपर बैठ जानेसे ही सब कुछ दे सकूँगा? खैर, माँग, पर तू जानता है, कंगाल हूँ, कहीं बात खाली न जाय। नंगा न कर देना मुझे!

मसूर—दोनों दुनियाका मालिक कंगाल तो अपनी मर्जीसे है, पर उसकी सल्तनतकी कोई चीज नहीं माँगूँगा। फकत उसका माँगूँगा, उसका अपना—बस इतना कि आज तख्तनशी होनेकी खुशीमें दस्तरख्वानकी लज्जतें मंजूर कर ली जायँ।

औरंग०—सूबे, मसूर, तुझमें मैं माँका प्यार पाता हूँ। पर काश कि तू समझ पाता कि ये लज्जतें मुझे अपनी ओर नहीं खींच पातीं! मुझे उन कीमती चीजोंको खानेका हक नहीं है। मैं महज उसे खानेका हकदार हूँ जिसे मेरे हाथ कमाकर खरीद सकते हैं। पर पुलाव और फिरनी, मुरक्क और केसर, हलीम और मुर्ग मेरे लिए नहीं। वैसे भी तू जानता है, मुझे गोश्तसे कुछ खास इश्क नहीं।

[चुपचाप टहलने लगता है। रोशनाराका मुसकराते हुए धीरे-धीरे प्रवेश]

रोशनारा—मैं दखल दे सकती हूँ, भाईजान?

औरंग०—बोल, रोशन। क्या कहती है, तू?

रोशनारा—कुछ पूछना चाहती हूँ, मेरे फकीर भाई।

औरंग०—पूछ, मेरी मुँहजोर बहन! जाहिर है तेरी आवाजमें [illegible] गई है।

रोशनारा—मैं पूछती हूँ, फिर यह तख्त क्यो ? यह शाही पोशाक क्यो ? यह जवाहरताजडा ताज क्यो ? मोतीभरे जूते क्यो ?

औरंग०—इसलिए कि वे औरगजेबके नही आलमगीरके हैं, खुदाके खिदमतगार बादशाहके, जो मेरे बाद वारिसके हकमे उतर जायेंगे—यह तख्त, यह ताज और कलगी, यह लेबास, ये जूते। और तुम देखेगी, मैं अपने लिए महल नही बनाऊँगा, मकबरा नही बनाऊँगा। जिन्दगीका दरवेश कयामत तक दरवेश रहेगा, इशा अल्लाह !

रोशनारा—तुम जिन्दा शहीद हो, मेरे भाई। बहिश्तके फरिश्ते तुमसे रश्क करेंगे ! [रोशनारा चुप हो रहती है। मसूर चुपचाप आँसू डालता रहता है। औरगजेब टहलता रहता है।]

[पटाक्षेप]

तोहि बोड़ तूफूल !

वाचक—जो तोको काँटा बुवे, ताहि वोइ तू फूल। भारतीय सस्कृतिका यह मूल मन्त्र रहा है। सदा सदा ही उसने घृणाका उत्तर स्नेहसे दिया है, क्रोधका दयासे, युद्धका शान्तिसे। हमारा समूचा इतिहास इसका साक्षी है।

वाचिका—वामे दुनियाके सफेद पामीरो और पीले चीनके वीच सरहिन्द है, भारतके प्राचीन उपनिवेशोका देश। उत्तर उसके चीनियोका देवगिरि तियेन शान है, दक्खिन क्युनलुनकी तिव्वती पर्वतमाला। पूरव क्युनलुनकी ही भुजा नान शान चीनकी अनेक महानदियो-का उद्गम है। पच्छिममे पामीरोकी शृङ्खला एक ओर हिन्दूकुश-को छूती है दूसरी ओर तियेन शानको।

वाचक—नदियोकी अनेक धाराएँ इन पर्वतोसे निकलकर पहले तेज फिर फैलकर धीमी वहती तकलामकानकी रेतमे खो जाती है। तियेन शानकी उत्तरी ढालसे उतर सिर दरिया अरल सागरकी ओर वह जाती है, काशगर दक्खिनी उतारसे उत्तर दक्खिनकी ओर, तारीम तकलामकानका परकोटा वनाती लावनौरकी ओर पूरव चली जाती है, और आमू पामीरो और हिन्दूकुशके वीच केसरकी क्यारियाँ उगाती, दाखोसे धरती ढकती, मैदानमे उतर जाती है। इन्ही नदियोके वीच कभी भारतीय सभ्यता फैली, वौद्ध वस्तियाँ वसी। यही हिन्दके सन्तोने लहू और लूटके नामपर दौड पडने-वाली खूँखार जातियोकी तलवारकी धारको चूमा और तलवारे वल्लरी वन गयी।

वाचिका—उसी दिशामे तारीमके तटपर कुचीका राज था। कुची ही राज-की राजधानी थी। कश्मीरी पण्डित कुमारायण एक दिन उसी कुचीमे जा पहुँचा। कश्मीरके उत्तरमे हिमालयका मस्तक करा-

कोरम है। सिन्धकी धारा उससे होकर बहती है, गिलगित और यासीनकी धाराएँ पामीरोंकी ओर निकल जाती हैं, कुमारायण गिलगित और यासीनकी कछारोंसे होता ताशकुरगन पहुँचा। आगे-की राह काशगरकी थी, कुचीकी, तुर्फान, तुन हुआङ्गकी, चीनकी। कुमारायण कुचीसे आगे न बढ़ सका।

वाचक—कुमारायण कश्मीरके राजाके मन्त्रिकुलमें जन्मा था। राजका मन्त्रित्व उसका पैतृक था। पर एक दिन उसे लात मार पामीरों-की छत लाँघता वह तारीमकी घाटीमें जा पहुँचा, कुचीके नगरमें। और अपने आकर्षक आचार, शालीन पौरुष, विदग्ध पाण्डित्यसे उसने राजधानीके जन-जनको मोह लिया। राजाने उसे अपना गुरु बनाया।

वाचिका—कुमारायणके जिस आकर्षणने जीवाको मोहा वह था उसका काम्य कलेवर, उसकी मदिर भारती, स्निग्ध सौरभ। जीवा राज-कन्या थी, अभिनव वसन्तकी उठती हिलोर-सी अल्हड़, वैसे ही बबूलके परागपीत कुसुम-सी कोमल, स्निग्ध सुखद। वही कुमारायण, वही जीवा एक दिन वसन्त वैभवसे लदी गुहाके सामने झाड़ियों-के बीच—

जीवा—हिमपातसे आकाश कैसा उदास हो जाता है, आचार्य, धरती कितनी सूनी हो जाती है। पर तब वसन्तका यह वैभव कहाँ छिपा रहता है भला, जो बादको सहसा बरस पड़ता है?

कुमारायण—जीव दुर्बल है, जीवे, पर उसकी साँस अमर है। उस साँस में समूचा वसन्त समाया रहता है और शिशिरका [illegible] तुषार-पात भी उसे नहीं मार पाता। अनुकूल पवनकी परस पाते ही वह अंकुर अनन्त-अनन्त प्राणोंसे पनप उठता है। [illegible] परम्परा धराको निहाल कर देती है।

जीवा—एक अकुर, एक सांस, एक प्राणकी जब यह शक्ति है, गुरुवर, तब जहाँ ग्यारहो प्राण एक-मन कांप रहे हो वहाँ वसन्त क्यो नही बगरता ? क्या प्राणवान्को प्राणोका मोह नही ?

कुमार०—वसन्त बगरेगा, जीवे। प्राणोका मोह भी प्राणवान्को है। पर साधनाका वरदान अभी ठिठका हुआ है। शीघ्र वह वरदान मिलेगा और तपसे डही काया फिर नवता धारण करेगी।

जीवा—कब, आचार्य, कब ? तपसे डहती कायापर उनचासो पवन झूम रहे है, अब तो सतीका दाहकुण्ड अपनाना ही शेष है।

कुमार०—नही, जीवे, ऐसा नही करना। सतीका आचरण यद्यपि तुम्हे सुलभ है, किन्तु शिवका पौरुष मुझमे कहाँ ! पर जानो, देवि, कि तप फल कर रहेगा, साधना सिद्ध होगी, स्नेहके कञ्चनमे रतनकी जोति जगेगी।

जीवा—गुरुवर, बारहो आदित्योके तापसे डही धराको उत्तरके मरुको लाँघकर बहता वायुवाहित शिशिरका हिम शीतल करता है और शिशिर की मारी कमलिनीको मधुका सौरभ अनुरागसे भेंट कर फिर खिला लेता है, पर मेरे मानसका मुकुल सदा सम्पुट ही रह जाता है, क्या यह यातना नही है ?

कुमार०—है, देवि। निश्चय है यह यातना, पर यातना यह परिष्कारकी है, मानसके परिष्कारकी। इसके आतपसे, शिशिरके हिमसे, जिस वसन्तका वैभव सजेगा उसका फिर अन्त न होगा। बस, तनिक और, फिर मधुकी मर्यादा बाँधते न बँधेगी।

जीवा—माना, देव, माना। पर कायाके डहनेकी भी एक मात्रा होती है। निदाघकी जलती दुपहरी लाँघ हिमके निठुर पालेपर हिया सेंकती है, मनका भरम टूटने नही देती, पर जब एक दिन वसन्त चराचरपर महना छितरा जाता है, चारो ओर अकुर फूटने लगते है, डहकती केसरसे झरती पराग अलकजालपर छा जाती है, तब,

साँझके आँचलमे लहकते केसर कुसुम झूम पडे । पवनके फैले पख उनसे झरती पराग दिशाओको ले उडे, दिशाएँ गमक उठी ।

वाचक—अगले दिन जब तारीमके जलमे स्नान्कर कुचीनरेश सूर्यको टटके कुसुमोका अर्घ्य चढा रथकी ओर बढा तभी उसकी उठती दृष्टिमे पुरुषकी छाया डोली । राजगुरु कुमारायण कर-बद्ध खडा था । राजाने प्रसन्न-वदन गुरुके चरण छुए, हाथ जोड बोला—

राजा—करबद्ध क्यो गुरुवर ? अकिञ्चन शिष्यकी श्रद्धा क्या व्यगसे तिरस्कृत होगी ?

कुमार०—नही, राजन्, व्यग नही सत्य करबद्ध हूँ आज । याचक हूँ आज तुम्हारा, आदेश हो तो माँगूँ ।

राजा—देव, वसिष्ठवत् राजकुलपर शासन करनेवाले आचार्यको अभिभूत शिष्यके आदेशकी कैसी आवश्यकता ! आज्ञा करे गुरुवर !—तारीमका केसरिया अचल दूँ या तुर्फान पर्यन्त यह उर्वर धरा ? या दण्ड-छत्र सहित यह राजमुकुट ही दे डालूँ ? बोले !

कुमार०—नही, राजन् ! नही चाहिए मुझे तुम्हारा यह तारीमका अनमोल केसरिया अचल, न लूँगा मै तुर्फान पर्यन्त यह उर्वर धरा, और न ही तुम्हारा यह राजलाछित मुकुट ।

राजा—फिर क्या दूँ, आचार्य ? तारीमसे उठते अरुणको साक्षी दे क्या अपने पुण्योका गुरु-चरणोमे सकल्प करूँ ?

कुमार०—नही, राजेन्द्र, पुण्योका लाभ तुम्हे हो ! मुझे तो इस काल माँगनी है वसिष्ठकी इष्ट-साधिका अरुन्धती, सतियोकी मणि अनुसूया । दे दो उसे ।

राजा—कौन है वह अरुन्धती, गुरुवर, कौन वह अनुसूया ?

कुमार०—तीन निर्मम निदाघ जिसकी स्मृतिमे कुचीमे काट चुका हूँ, तीन शिशिरके हिमपात जिसकी आशामे झेले है, प्रात सन्ध्याके देव-चिन्तनमे जिसकी द्युति नित्य झलकती रही है, उसी जीवाको

पत्नी रूपमें माँगता हूँ। दे दो, राजन्, मुझे अपनी वह अमूल्य निधि! अखण्ड अनुरागमें उसका अन्तर आर्द्र है, निःसीम स्नेहसे मेरा मानस अभिषिक्त है। दे दो कि हम दोनों पावन अन्तरसे दौड़कर रथचक्रोंकी भाँति एक दूसरेको भेंटे, कि बाहरी तापको घेर लें।

राजा—अनुगृहीत हुआ, गुरुवर। पर एक शंका है। [कुछ रुककर] भला जीवाका तारुण्य प्रौढ़ पौरुषके प्रतिकूल न होगा?

कुमार०—नहीं, राजन्। काया कालपरिमित है, जीव कालातीत। जीव यौवन और जराकी परिधिमें नहीं बँधता। जीवाका तारुण्य प्रौढ़ पौरुषका व्यंग न बनेगा, निश्चिन्त हों।

राजा—निश्चिन्त हुआ, आचार्य। जीवा आपकी सहभागिनी हो, आप दोनों रथचक्रोंकी भाँति दौड़कर एक दूसरेको भेंटे, बाहरी तापको घेर लें।

कुमार०—निहाल हुआ!

वाचक—और उसी दिन कुमारायण और जीवा पति-पत्नी बने। दिवस, सप्ताह बीते, मास और वर्ष। तीन बार। तीसरी बार जब दिशाएँ ऋतुमती हुईं, तारीमके अंचलमें तीसरी बार जब केसरकी क्यारियाँ कुसुमित हुईं, तब जीवाकी कोख भरी। नयनाभिराम नवजात दिशाओंको प्रसन्न करता अभिराम रोया। माता-पिताके संयुक्त स्नेहके परिचायक उस शिशुका नाम पड़ा कुमारजीव।

वाचिका—पाँच वर्ष बाद कुमारायण भिक्षु होकर चला गया। जीवा भिक्षुणी बन कुचीके संघाराममें रहने लगी। फिर एक दिन दोनों, जीवा और नौ वर्षका उसका कुमारजीव, कश्मीर जा पहुँचे, अध्ययनके लिए। वहीं पन्द्रह वर्ष बाद, महाविहारके विशाल आँगनमें, जहाँ हजारों भिक्षु-भिक्षुणियाँ, उपासक उपासिकाएँ [illegible] भीड़ भिक्षु कुमारजीवके प्रवचन सुननेके लिए उपस्थित थी—

कुमार०—श्रावको, मेरे ज्ञानवान श्रावको, आजका दिन अनमोल है—तथागतके जन्मका, महाभिनिष्क्रमणका, उनकी सम्यक् सम्वोधीका, निर्वाणका ! आजकी इस पुण्य तिथिपर आपसे मै कुछ माँगूँगा ।

['माँगें, भिक्षु, माँगें !' की अनेक आवाजें ।]

कुमार०—मेरे श्रद्धावान श्रावको, अव तक तुम्हे मै देता रहा हूँ, आज मुझे तुम दो जो कुछ मैने आचार्यो, स्थविरोसे पाया, जो कुछ मैने भगवान्‌के जीवनसे, उपदेशसे पाया, जो कुछ स्वय गुना, वह सारा ही तुम्हे मैने मुट्ठी खोलकर दिया है । माता जैसे गर्भके शिशुको अपनी समस्त शिराओ द्वारा शरीरमे पहुँचनेवाले आहारसे, पेयसे, अनायास पुष्ट करती है, चाहकर भी अपने आहार और पेयके रससे उसे वचित नही रख सकती, उसी प्रकार मैने भी तुम्हारे मानसको अपने सचित और गुने ज्ञानसे भरा है, वर्षो । पर आज मै तुम्हारे वीच याचक वनकर माँगने आया हूँ, निराश न करना मुझे ! अजलि खोलकर, ग्यारहो प्राण इस अजलिमे समेटे, रोम-रोमके कूप खोले, आज माँगता हूँ, दे दो, मेरे श्रावक-श्राविकाओ !

[माँगें, प्रभु, माँगें ! भिक्षा, माँगें !' की आवाज]

कुमार०—आज तुम अपने सारे पाप, सारी व्यथाएँ, सारे कलक, सारे मोहवन्ध, रोग-व्याधियाँ, शोक-चिन्ताएँ मुझे दे दो । देखो, तुमने वचन दिया है, निराश न करना । तुम्हारा याचक आज अपने सघाटीका आँचल फैलाये माँग रहा है । अपना मोह-आसक्ति, तृष्णा-वासना, अपने राग-द्वेष, क्रोध-ग्लानि आज मुझे दे दो ! मेरे अनमोल वन्धुओ, वुद्धोकी अटूट पक्तियोने, साधुओकी जुग-जुगकी वाणीने केवल तुम्हें दिया है, कुछ भी तुमसे लिया नही, पर आज उन सवकी वाणीको अपने कण्ठमें डाले, भिक्षा-पात्रकी अनन्त गहराइयोके द्वार खोले, याचक तुमसे माँग रहा है ! भर

मानते। जलते नगर, उजडते गाँव उनकी चली राहकी कथा कहते हैं। न जाओ, हूणोकी ओर, भिक्षु!

कुमार०—पर मुझे तो उन्हीमे जाना है, भन्ते। शाक्यसिहकी गिराका, उन्हीके आदिनिवास कानमूमे, चीनके उस उत्तर-पश्चिमी प्रान्तमे उद्घोष करूँगा। इस देशमे, यहाँकी परम्परामे शान्ति और स्नेहकी कमी नही। शान्ति और स्नेहकी आवश्यकता उसी भूमिको है जहाँ हूणोके मृत्यु-ताण्डवसे धरा धर्पित है, काँप रही है। हूणोकी दिशाएँ मुझे पुकार रही है! अनुमति दे, भन्ते!

स्थविर—काननूमे, हूणोकी मूल भूमिपर?

कुमार०—हाँ, भन्ते, कानसूमे, हूणोकी मूल भूमिपर ही तथागतके सन्देश का शङ्ख फूँकूँगा! देशका नस्कार, घृणाका वदला प्रेमसे, क्रोधका दयासे देता रहा है। महामना अशोकके पितामहके समय यवन अलिकसुन्दरने सप्तसिन्धु जीता। असि और अग्नि लेकर आया था वर्वर। दो पीढी वाद अशोकने अलिकसुन्दरके देश मकदूनिया मे, यवन राज्योमे, औपधियाँ वँटवायी थी! असि और अग्निके वदले उन्होने जीनेके साधन वाँटे! कैसे भूलूँ, भन्ते, उस पावन परम्पराको? जाने दे मुझे भिक्षुतम, अनुमति दे!

स्थविर—जाओ, भिक्षु, निर्वन्ध हो! दिशाओमे समा जाओ! तुम्हारी गिरा गगनके दूरतम छोरोको छू ले! तुम्हारे पराक्रमसे सद्धर्म व्यापक हो! जाओ, वहुजनहिताय! वहुजनसुखाय!

कुमार०—वहुजनहिताय! वहुजनसुखाय!

[पगचापकी ध्वनि]

वाचक—और भिक्षु चला गया, कश्मीरकी ऊँचाइयोसे उतर काबुलकी घाटीमे नगरहार होता वामियानकी ओर, फिर हिन्दुकुश लाँघ आमू पार वह्लीकोमे। वही अब हूण वसते थे। और चढ गया

निर्द्वन्द्व भिक्षु पामीरोकी चोटीपर, वहाँ उनकी बस्तियोमे, जिनका परकोटा बर्फकी मेखला बनाती थी, जहाँ जाने-आनेके मार्ग मात्र ग्रीष्ममे खुलते थे ।

वाचिका—और वही हिमकी आँधी झेलता, निर्चीवर धारे, झीने कषाय मात्रमे भयानक शीत जीतता कुमारजीव जा पहुँचा । हूणोके पडावमे—चँवरी गायोकी खालके तम्बुओमे रातके प्यासे असभ्य हूणोका निवास था—सिंहको फाड डालनेवाले कुत्तोके बीच, हुङ्कारसे पर्वतकी छाती दरका देनेवाले हूणोके बीच ! काया कोमल थी उस भिक्षुकी, आत्मा लोहवत् दृढ, मन्तव्य प्रमाणमे निर्मम था । सन्तरियोने घेर लिया । ले गये सरदारके सामने, भालोके बीच ।

सरदार—[बिजलीकी कडक-सी आवाजमे] कौन हो तुम ?

कुमार० [हँसकर] पहचानो !

सरदार—[कुछ रुककर स्निग्ध स्वरमे] मै, हाँ, पहचाना, शत्रु हो ।

कुमार०—बन्धु हूँ, तनिक आस्थासे पहचानो, हूणपति ।

सरदार—अरे, तुम तो वही हो ।

कुमार०—हाँ, वही हूँ, पर हूँ तुम्हारा बन्धु ही ।

सरदार—क्या तुमने मेरे सैनिकोपर जादूसे मेरे विद्रोही सन्तानको उन्मुक्त नहीं किया था ?

कुमार०—किया था, पर जादू करके नहीं, औचित्य बताकर । और वह तुम्हारा शत्रु नहीं, पुत्र था, आत्मज ।

सरदार—मै उसे पुत्र नहीं मानता, विद्रोही है वह, मेरा शत्रु । और देखो, तुम्हारी मृत्यु ही तुम्हें भी यहाँ खींच लायी है ।

कुमार०—[हँसकर] विद्रोह तो स्वयं तुम्हारा अन्तर तुमसे कर रहा है, जैसे तुम्हारे पुत्रने तुमसे किया था । यदि मरना ही है, तो मन

अकिञ्चन भिक्षुको मारकर मुझे बडभागी ही बनाओगे। मरण तो शरीर-बन्धसे मुक्तिका नाम है।

सरदार—[कडककर] मै तुम्हारी ये बाते नही समझता। न तब समझा न अब समझ पा रहा हूँ। मै एक बात समझता हूँ, कि तुम मेरे विद्रोही शत्रुको बन्धन-मुक्त करके मेरे शत्रु हो गये हो, और मुझसे शत्रुताका परिणाम तुम जानते हो!

कुमार०—[धीमे स्वरमे] हूणपति, जिसके उल्लासकी कथा उजडे गाँव और धधकते नगर कहते है उसके कोपके परिणामका अनुमान करना कठिन नही, पर मै फिर कहता हूँ—तुम्हारा बन्धु हूँ, तुम्हे भयसे मुक्त करने आया हूँ।

सरदार—[कडककर] बन्द कर बकवास! सिंहकी माँदमे सिंहको छेड रहा है। मुझे कायर कहता है। मुझे किसका भय? जिसके भयसे दिशाएँ काँपती है, शत्रु बिना लडे पहाडकी चोटीसे कूदकर डरसे प्राण दे देते है उसे डरपोक कहता है। जिसकी सेनाओंकी धमकसे पामीरोकी छाती दरक जाती है, वह डरेगा! जिसका नाम सुनते ही सार्थवाह विपन्न हो जाते है, कश्मीर और काशगर, बामियान और बास्त्री, खुतन और कुची, तियेनशान और तुर्फान हिल जाते है, उसे भय है! तू पागल है, निरा पागल!

कुमार०—कोप न करो, हूणपति, तथ्यको समझो। तुम्हारी सारी क्रियाओंका कारण त्रास है, अकारण भय। कश्मीर और काशगरको तुम डरसे लूटते हो, बामियान और बास्त्रीको समय-समयपर तुम उसी भयके कारण रौंद आते हो, खुतन और कुचीपर तुम त्रासके मारे ही घेरे डाला करते हो, तियेनशान और तुर्फानकी गुहाएँ तुम्हारे मारक शत्रु न उगल दे इस डरसे बार-बार उनके फेरे लगाते रहते हो। बोलो, क्या यह सच नही? मनको

उमड आता है, उनके दु खोकी यादसे काया डह जाती है । पर भला तुम तो कहो, हूणपति, क्या तुम्हारी राते शान्तिसे बीतती है ? [रुककर] पर तुम्हारे नेत्रोमे तो उन्निद्र बसा है । मै तुम्हारे दु खसे दुखी हूँ, हूणपति, आकुल मनको स्थिर करो ।

सरदार—[बनावटी कडक भरी आवाज] मेरा मन स्थिर है, भिक्षु । राते चैनसे सोकर बिताई है मैने । मै निडर हूँ, कालसे भी नही डरता ।

कुमार०—[बात काटकर हँसते हुए] तुम अपनी छायासे डरते हो, हूणपति, अपने ही स्वरसे, अपने किये कृत्योसे । लोभने तुम्हे क्रोध दिया, क्रोधने कृत्य, कृत्योने भय और अब तुम्हारा सारा आचरण मात्र त्रासके अधीन है । वही तुम्हारी सेनाओका सगठन करता है, तुम्हारे अभियानोका निश्चय करता है, युद्धोका सचालन । भयकी तुमने आँधी चलायी है, उसके प्रधान शिकार स्वय तुम हो चले हो ।

सरदार—[सहसा आसनसे गिर पडता है] ऐ, यह मुझे क्या हुआ ?

[सैनिकोका डरकर इधर-उधर हट जाना]

कुमार०—[सरदारको आसनपर बैठाता हुआ] उठो, सज्ञा लाभ करो, हूणपति । ससारमे भयका पक्ष गौण है । ससारका प्रजनन-पालन स्नेहसे होता है । स्नेह उसका प्रधान पक्ष है, जानो । जो दूसरोको अपने त्राससे शङ्कित करता है वह स्वय अपनी छायासे डरता है। धरापर इतनी धूप फैली है, इतना बन्धुत्व भरा है ससारमे—उनका अपमान न करो, भोगो उन्हें ।

सरदार—[धीमे स्वरमे] भिक्षु !

कुमार०—बोलो, हूणपति । कहो ।

सरदार—न कहो हूणपति मुझे, भिक्षु । मै तुम्हारी कीलोपर भी चलनेवाली शक्तिसे ईर्ष्या करता हूँ । तुम अपनी यह शान्ति, यह

सघ०—भन्ते, अब प्यासके मारे प्राण आकण्ठ आ गये है। एक पग नही बढा जाता। टट्टुओकी भी शक्ति क्षीण हो चुकी है।

कुमार०—उनकी चिन्ता न करो, सघमित्र। पशुमे मनुष्यसे प्यास कम होती है। जीवोमे तृष्णालु सबसे अधिक मानव ही है। [हँसता है।]

सघ०—कैसे सयम रख पा रहे है, भन्ते ? आप तो मुझसे कही दुर्बल है। आपके होठ तो और भी अधिक सूख गये है।

कुमार०—[हँसता हुआ] सघमित्र, चोटसे चट्टान टूट जाती है, पहाड-की छाती दरक जाती है, पर मानव हृदय अपने ऊपर रेप नही लगने देता। वह जितना ही क्रूर हो सकता है, कठोर, उतना ही स्नेहिल, द्रव भी। हिया पाहनसे भी कठोर है, वज्रसे भी निर्मम, और सहनेकी शक्ति जितनी उसमे है उतनी लोहेमे भी नही। काया गल जाती है पर मर्मका बना हिया मुरझाता तक नही। मनकी शक्ति बडी है भिक्षु, अपार।

सघ०—क्या करूँ, भन्ते ! अब तो जैसे चरण कण्ठमे समाकर अवरुद्ध हो गये है। प्यास अब और चलने न देगी। अब मुझे, भन्ते, इस सिकतामे समाधि लेने दे। आप मेरे चीवर ले ले, सम्भवत आतपसे कुछ रक्षा हो।

कुमार०—[हँसकर] तुम्हारे चीवर आतपसे मेरी रक्षा कहाँ तक कर सकेगे, सघमित्र ? अच्छा देखो, एक काम करो। अश्वकी शिरा काटकर थोडा रक्त पी लो, पिपासा कुछ शान्त हो जायेगी।

सघ०—ऐ, यह क्या भन्ते ? हिंसा ?

कुमार०—यह हिंसा नही है, भिक्षु, रक्षा-कवच है, धारण करो इसे। जीवनसे बढकर कुछ भी पवित्र नही। फिर इष्ट कानसू पहुँचना है, जीवित रहकर। यहाँ अधिकके लिए कोडेका हनन है। इष्ट

जीवा—जाओ, भिक्षु, कानसूका तुम्हारा संकल्प पूरा हो !

कुमार०—चिन्ता न करना, देवि, सद्धर्मके महामार्गपर तुम्हीने मुझे आरूढ किया था। आशीर्वचन करो कि चेतूँ, कि उपासक चेते, कि जग चेते।

जीवा—जाओ, कुमारजीव, जाओ ! पन्थ निःशूल हो। तथागतके देखे सत्यका प्रसार करो—सत्य जिसका आदि कल्याणकर है, मध्य कल्याणकर है, अन्त कल्याणकर है ! बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय, जाओ !

कुमार०—[जाता हुआ] बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय !

वाचिका—और भिक्षु चला गया, वन्दियोके बीच, विजयिनी चीनी सेनाके साथ। जब तक ऊँटोकी घण्टियाँ बजती रही, जब तक टट्टुओकी धुँधली रेखा क्षितिजसे मिट न गयी, जब तक उनके पदोसे उठी धूल आकाशमे विलीन न हो गयी, तब तक जीवा खडी पूर्वकी ओर भरे नयनो देखती रही।

[ठक् ठक् ठक् पत्थर काटनेकी आवाज उसीके बीच वाचिकाका स्वर]

वाचिका—तुन हुआंगकी गुफाएँ खुद रही है [ठक् 'ठक्की आवाज निरन्तर], कान-सूके हूणोने नत-मस्तक हो कुमारजीवके उपदेश अपनाये है। गुफाएँ काटी जा रही है। आस्थावान श्रम पर्वत तोडता जा रहा है कि उसकी चिकनाई दीवारोपर बुद्धके चारो वैभव लिख लिये जाँय—जन्मके, महाभिनिष्क्रमणके, सम्बोधीके, निर्वाणके, कि विश्वबन्धुत्वकी उदार धारा मरुमे निरन्तर बहती रहे, कि प्रीति घृणाको जीत ले, मानवता बर्बरताको।

पाठक—कुमारजीवकी युग-साधना पूरी हुई। बारह वर्ष हूणोके मूल

दिशाएँ रक्तके छींटोसे लाल हो उठी है, नदियोमे रक्ताभ जल उमड आया है । लोकपाल विचलित हो गये है ।

स्थविर—[कुछ ऊँची भारी आवाजमे] प्रवचनोकी मात्रा बढा दो, स्नेहकी बाढमे घृणाको डुबा दो । यहाँके हूण सद्धर्ममे दीक्षित हो चुके है, उनका सकल्प उनके बन्धुओका इष्ट होगा । कोप न करो, भन्ते ।

प्रज्ञारुचि—कोप नही करता, भन्ते । पर तनिक और सुने—भारतका वैभव नष्टप्राय है । हूणोने सप्तसिन्धुसे अन्तर्वेद तक धरा आक्रान्त कर ली है । तथागतकी मूर्तियाँ मध्यदेशमे, गान्धार और उद्यानमे चूर-चूर हो रही है । गुप्त सम्राटोका विशाल साम्राज्य लडखडाकर गिर पडा है । सरस्वती बर्बर हूणोको मोर्छल झल रही है ।

स्थविर—शान्त हो, भिक्षु ! सद्धर्मका पराक्रम कुछ थोडा नही । हूणोकी गति रुक जायेगी, उसी मात्रामे जिस मात्रामे हमारा स्नेह उन पर प्राणवान् होगा । रोमनोकी शक्ति-ताण्डवसे गुप्तोका शक्ति-ताण्डव भिन्न नही है । मानवका मूल आचार मानवीयता है, उस मानवीयताका नाम स्नेह और बन्धुत्व है । हिंसाके बाहुल्यका अर्थ है विरोधी तप और साधना, प्रेम और दयाकी कमी । गुप्त साम्राज्य मिट गया, मिट जाय । देशकी मूल प्रेरणा जब तक विश्वबन्धुत्व है, क्रोधका उत्तर जब तक वह शान्ति और क्षमासे देता है, तब तक उसका स्रोत सूख नही सकता, जीवन सहस्र-धाराओमे प्राणवान् होकर बहेगा । निर्द्वन्द्व हो, भिक्षु, गरल पीकर अमृत उगलो । नीलकण्ठके व्यापक आचारसे मूर्धा टिका दो ।

[निरन्तर छेनियोकी आवाज]

धाचिषा—और तुम हूआगके दरीगृह नदियो अपने कलेवरपर अजन्ताकी परम्परा उतारते गये । हूणोकी युद्ध-पिपासा मिट गई । चीनने

महाभिनिष्क्रमण

दृश्य १

[मूल पाली पदोका पाठ]

[दिव्य सगीत—वाचककी पृष्ठ-भूमिमे मन्दस्वर ।]

वाचक—अचिरावती, रोहिणीके मध्य लुम्बिनी फूल उठी । देवदहके मार्गमे माया खडी थी, शालभजिकाकी मुद्रामे । शाल फूल उठा । [तनिक रुक कर] नवजातने सात पग लिये, पग-पगपर पुण्डरीक विकसा । शक्र और महाब्रह्माने नवजातको उठा लिया, कल्पतरुओंके कुसुमजाल पर । प्रसन्न देवोंके उत्सव अपनी परिधियोंको लांघ चले । उनसे भावी बुद्धका जन्म सुन महर्पि कालदेवल शुद्धोदनके महलोमे पहुँचे । नवजातको देखकर गद्गद हुए । लक्षण पढे—[सगीतका तिरोभाव] ।

कालदेवल—बत्तीस लक्षण, अस्सी अनुव्यजन ।

शुद्धोदन—[गद्गद स्वरसे] परिणाम महर्पि ?

[नेपथ्यसे] "स चेदगारमध्यावसति राजा भवति । चतुरङ्गश्चक्रवर्ती··· स चेत्पुनरगारादनगारिका प्रव्रजति तथागतो भविष्यति विघुष्टशब्द सम्यक्सम्बुद्ध ।"

काल०—सार्वभौम चक्रवर्ती ।

शुद्धोदन—[प्रसन्न स्वरसे] सार्वभौम चक्रवर्ती ?

काल०—सार्वभौम चक्रवर्ती । सार्वभौम बुद्ध ।

शुद्धोदन—नहीं समझा, महामुनि ।

काल०—नवजात यदि ससारमे रुका तो सार्वभौम चक्रवर्ती होगा, प्रव्रजित हो गया तो सार्वभौम बुद्ध ।

वाचक—महर्पि सहसा रो पडे । फिर भागिनेय नालकको देख हँसे ।

सिद्धार्थ—सौम्य ! कौन है यह ? इसके तो केश भी औरोकेसे नही ?
सारथी—वृद्‌ध, कुमार, वृद्‌ध है यह । सारे जीवधारियोको इसीकी भाँति एक दिन जराजर्जर होना होता है ।
सिद्धार्थ—धिक्कार है ऐसे जन्मको, जरा जिसमे जीवधारीको शिथिल कर देती है ! लौटो, मित्र, फेरो रथ ।
सारथी—आयुष्मान् उपवन न चलेगे ?
सिद्धार्थ—रथ फेर लो, मित्र ! लौटो, निवासको लौटो ।

[रथके लौटनेकी ध्वनि]

शुद्धो०—[प्रवेश कर] सारथि, कुमार इतने शीघ्र कैसे लौटे ?
सारथी—देव, उन्होने वृद्‌ध देखा है, और उन्होने जो वृद्‌ध देखा तो ससारसे विरक्त हो चले ।
शुद्धोदन—मेरा नाश न करो । शीघ्र नृत्यका आयोजन करो । विलासमे रम कर फिर वह ससार तजनेका विचार न करेगे ।
वाचक—राजाने पहरेपर दुहरे सतरी बिठा दिये । दिन बीत चले । और एक दिन उसी रथपर, उसी राजपथ पर—

[रथकी ध्वनि]

सिद्धार्थ—मित्र सारथि, कौन है यह जर्जरकाय, स्थूलोदर, पाण्डुगात्र, काँपता, कराहता ?
सारथी—रुग्ण, कुमार, रुग्ण । सभी जीवधारियोको एक दिन ऐसे ही रोग का शिकार होना होगा ।
सिद्धार्थ—धिक्कार है ऐसे जन्मको, रोग जिसमे इतना प्रबल होकर कायाको व्यर्थ कर देता है ! लौटो, मित्र, फेरो रथ ।
सारथी—आयुष्मान् उपवन न चलेंगे ?
सिद्‌धार्थ—रथ फेर लो, मित्र । लौटो, निवासको लौटो ।

[रथकी ध्वनि]

शुद्धो०—महर्षि, दु खी क्यो हुए ? क्या सकटके भयमे ?
काल०—आश्वस्त हो, राजन्, सकटकी नवजातपर छाया तक नही पडेगी। [फिर नालककी ओर देखकर] भागिनेय, भाग्यवान् है तू, सुनेगा, मै अभागा जो शाक्यसिहको सुन न सकूँगा।

दृश्य २

वाचक—अकुर बढ चला, कोपले फूटती गयी, माया स्वर्ग सिधार चुकी थी, पर माँ सी प्रजापती गोतमीका मधुमय स्नेह पा सिद्धार्थ बढ चले। आचार्य विश्वामित्रने ज्ञान दिया, शास्त्राचार्यने हस्तलाघव। पर पिताका अन्तर आकुल था। उसमे चोर घुसा था, पुत्रकी भावी प्रव्रज्याका चोर।
वाचिका—उसने तरुणके चारो ओर विलासकी परिखा बाँधी। तीन-तीन महल खडे किये—शीतकालके, ग्रीष्म और वर्षाके। उनके उद्यानोमे पद्मसर लहराने लगे, नील श्वेत रक्तिम कमल अभिराम डोलने लगे। शरद् और शिशिर, हेमन्त और वसन्त, निदाघ और वर्षा अपने ऋतु-वैभवसे उन महलोको, उनके पराग भरे उद्यानोको निहाल करने लगे। मधुसेवी मदिर नारियोके बीच मादक लावण्यकी धनी थी स्वय सिद्धार्थकी प्रिया गोपा, दण्डपाणिकी कन्या यशोधरा। पर इस विलासके विपुल कोटमे भी कुमार गौतमके मुखपर चिन्ताके बादल डोल जाते, कवल कुम्हला उठता। कुमार पुष्करिणीके तीर चले जाते, चुपचाप। जामुनके पेड तले जा बैठते, समाधिमें नेत्र मुँद जाते। और वृक्षोकी छाया लम्बी हो जाती पर जामुनकी छाया निष्कम्प खडी रहती।
वाचक—और तभी एक दिन सैन्धव घोडोसे जुडे रथपर चढ सिद्धार्थ जब उद्यानकी ओर राजमार्गपर चले।

[रथ-गमनकी ध्वनि]

सिद्धार्थ—सौम्य ! कौन है यह ? इसके तो केश भी औरोकेसे नही ?

सारथी—वृद्ध, कुमार, वृद्ध है यह । सारे जीवधारियोको इसीकी भाँति एक दिन जराजर्जर होना होता है ।

सिद्धार्थ—धिक्कार है ऐसे जन्मको, जरा जिसमे जीवधारीको शिथिल कर देती है ! लौटो, मित्र, फेरो रथ ।

सारथी—आयुष्मान् उपवन न चलेंगे ?

सिद्धार्थ—रथ फेर लो, मित्र ! लौटो, निवासको लौटो ।

[रथके लौटनेकी ध्वनि]

शुद्धो०—[प्रवेश कर] सारथि, कुमार इतने शीघ्र कैसे लौटे ?

सारथी—देव, उन्होने वृद्ध देखा है, और उन्होने जो वृद्ध देखा तो ससारसे विरक्त हो चले ।

शुद्धोदन—मेरा नाश न करो । शीघ्र नृत्यका आयोजन करो । विलासमे रम कर फिर वह ससार तजनेका विचार न करेंगे ।

वाचक—राजाने पहरेपर दुहरे सतरी विठा दिये । दिन वीत चले । और एक दिन उसी रथपर, उसी राजपथ पर—

[रथकी ध्वनि]

सिद्धार्थ—मित्र सारथि, कौन है यह जर्जरकाय, स्थूलोदर, पाण्डुगात्र, कांपता, कराहता ?

सारथी—रुग्ण, कुमार, रुग्ण । सभी जीवधारियोको एक दिन ऐसे ही रोग का शिकार होना होगा ।

सिद्धार्थ—धिक्कार है ऐसे जन्मको, रोग जिसमे इतना प्रवल होकर काया-को व्यर्थ कर देता है ! लौटो, मित्र, फेरो रथ ।

सारथी—आयुष्मान् उपवन न चलेंगे ?

सिद्धार्थ—रथ फेर लो, मित्र । लौटो, निवासको लौटो ।

[रथकी ध्वनि]

शुद्धोदन—(प्रवेशकर सावेग) सारथि, कुमार इतना शीघ्र कैसे लौटे ?

सारथी—देव, उन्होंने रुग्ण देखा है, और उन्होंने जो रुग्ण देखा तो ससार-से विरक्त हो चले।

शुद्धोदन—मेरा नाश न करो। क्रीडाओंका आयोजन करो।

वाचक—और पहरुए दुगुने हो गये, फिर उसी रथपर, उसी राजपथ पर—

[रथकी ध्वनि]

सिद्धार्थ—यह कौन, मित्र सारथि, निस्पन्द, निर्जीव ?

सारथी—मृतक, कुमार, मृतक। जीवधारियोंकी अन्तिम गति यही है, मरण।

सिद्धार्थ—धिक्कार है ऐसे जन्मको जिसका अन्त मरण है। लौटो मित्र, फेरो रथ।

[स्वल्प विराम]

वाचक—और शुद्धोदनने जो यह सुना तो पहरुओंकी सख्या दुगुनी कर दी, क्रीडाका आयोजन बढा दिया। फिर एक दिन उसी रथपर, उसी राजपथपर—

[रथकी ध्वनि]

सिद्धार्थ—मित्र सारथि, यह कौन, दीप्ताननधारी ?

सारथी—भिक्षु, कुमार, परिव्राजक।

सिद्धार्थ—हाँको मित्र, रथ हाँको, शिथिल न करो उसे। उपवन चलो।

वाचक—तत शिव कुसुमितबालपादप परिभ्रमत्प्रमुदितमत्तकोकिलम्।
विमानवत्सकमलचारुदीर्घिकं ददर्श तद्वनमिव नन्दन वनम् ॥
उद्यान क्या था, नन्दनवन था, फूले तरुओंपर मत्त कोकिल भ्रम रहे थे, सुन्दर दीर्घिकाओंमें कमल विकसे थे—विस्मय विस्फारित नेत्रोंसे वहाँ सुन्दरियोंने कुमारका स्वागत किया। विविध चेष्टाओं-

से, ललित पदावलिसे, प्रणय उपहारसे वे कुमारको आकृष्ट करने लगी। पर कुमार सयमसे डिगे नही।

सिद्धार्थ—क्या ये नारियाँ अपने यौवनको क्षणिक नही समझती? रूपसे उन्मत्त है ये, जरा जिसे नष्ट कर देगी। हा धिक्!

[घुंघरूकी आवाज]

एक गणिका—प्रियतम!

सिद्धार्थ—[अपने आप] निश्चय ये अपनेको रोगसे आक्रान्त नही देखती, तभी तो व्याधिभरे जगत्मे ये इस प्रकार प्रसन्न है।

दूसरी गणिका—पद्मलोचन!

सिद्धार्थ—[अपने आप] सर्वापहारी मृत्युसे अनुद्विग्न होनेसे ही ये स्वस्थ और निरुद्विग्न खेलती है, हँसती है।

नारी स्वर—भक्ति-लेख सम्पन्न करो, अभिराम तरुण, कपोल उत्सुक है, रागरजित करो इन्हे।

सिद्धार्थ—[अपने आप] जरा-व्याधि-मृत्युको जानता हुआ कौन बुद्धिमान निरुद्विग्न रह सकता है? प्रगट है कि जैसे एक वृक्षको गिरते देखकर दूसरे वृक्ष शोक नही करते, जरा-व्याधिसे पीडित जीवो और मृतकोको देखकर इन्हे भी शोक नही होता।

उदायी—[प्रदेशकर] कुमार, राजा द्वारा नियुक्त तुम्हारा योग्य मित्र हूँ। प्रेमाकुल कुछ कहना चाहता हूँ।

सिद्धार्थ—बोलो मित्र!

उदायी—मित्र भावसे कहता हूँ, कुमार, नारियोके प्रति उदारताका यह अभाव तुम जैसे तरुणके योग्य नही। विशालाक्ष, हृदय विमुख होते भी अपने रूपके अनुरूप उनके अनुकूल आचरण करो। कामचारिणी इन नारियोकी उपेक्षा न करो। साहचर्यका उपभोग करो।

सिद्धार्थ—मित्रतासूचक तुम्हारे वचन, तुम्हारे अनुकूल ही है, सौम्य। मै विपयोकी अवज्ञा नही करता, पर जगत्को अनित्य जानकर उसमे मेरा मन रम नही पाता। आनन्दपर जरा ताक लगाये बैठी है, विलासपर व्याधि बलवती है, सौन्दर्यपर मृत्युकी छाया डोलती है, कैसे भोगूँ इन्हे मित्र।

उदायी—वयस्य, अनेक ऋषियो-देवताओने भी इस प्रकारके दुर्लभ भोगोका अनुधावन किया है और इनकी ओर उनके मनमे मोह उत्पन्न हुआ है किन्तु तुमको तो ये दुर्लभ भोग स्वत प्राप्त हुए है। तुम इनकी उपेक्षा क्यो करते हो ?

सिद्धार्थ—मै अस्थिर सुखकी चरितार्थताको प्रमाण कैसे मानूँ ? सयतात्मा-को विपयोमे आसक्ति नही होती। कैसे रमूँ, क्षयकारक विपयो-मे ? मृत्युको अनिवार्य जानते हुए भी जिसके हृदयमे काम उदय होता है, उसकी बुद्धि लोहेकी बनी समझता हूँ, क्योकि महाभयके होते वह प्रसन्न होता है, रोता नही।

[नेपथ्यमे]

असशयं मृत्युरिति प्रजानतो नरस्य रागो हृदि यस्य जायते।
अयोमयी तस्य परैमि चेतना महाभये रज्यति यो न रोदिति ॥

[प्रकाशका सूचक सगीत]

[illegible]—अपने प्रमावनको इस प्रकार व्यर्थ जान विहार-भूमिकी प्रम-दाओने अपने मडनकुसुम मसल डाले, फिर प्रणय-चेष्टाओके निष्फल होनेपर कामका निग्रह करती, भग्न मनोरथ होकर नगरको लौट गई।

ततो वृथाधारितभूपणस्रज कलागुणैश्च प्रणयैश्च निष्फलै।
स्व एव भावे विनिगृह्य मन्मथ पुर ययुर्भग्नमनोरथा स्त्रिय ॥

दृश्य ३

वाचक—विहार-भूमिमे दिन भर विनोदकर सिद्धार्थने पुष्करिणीमे स्नान किया। फिर विविध प्रसाधन अलकरणोसे युक्त हो उत्तम रथपर चढ वे जैसे ही महलोकी ओर चले, दासी आ पहुँची।

दासी—[उल्लासभरे शब्दोमे] आर्य, शुभ हुआ! तनय!

सिद्धार्थ—अशुभ हुआ, राहुल! बन्धन उत्पन्न हुआ!

वाचक—राजाने नवजातका नाम राहुलकुमार रख दिया। उधर क्षत्रिय कन्या किसा गोमतीने अपने प्रासादसे नगरकी परिक्रमा करते बोधिसत्त्वकी शोभा देखी। फिर हर्ष गद्गद उसने उदान कहा—

निब्बुता नून सा माता, निब्बुतो नून सो पिता।
निब्बुता नून सा नारी यस्साय ईदिसो पती॥
[निदान कथा]

परम शान्त है वह माता, परम शान्त है वह पिता।
परम शान्त है वह नारी, जिसका यह पति है!

सिद्धार्थ—सच कहा इसने। परम शान्ति खोजनी है मुझे, निर्वाण पद पाना है। लो, सारथि, कल्याणी किसा गोमतीको मेरा यह मुक्ताहार दो। कहो उससे, फले उसकी वाणी। [मुक्ताहार देता है] यह हार उसकी गुरु-दक्षिणा हो। चला मै अब विजनकी ओर।

वाचक—जरा-मरणके विनाशके लिए वन जानेकी इच्छा करनेवाले बोधिसत्त्वने अनिच्छासे महलोमे प्रवेश किया, जैसे वनैला हाथी पालतू हाथियोको घेरेमे करता है। फिर पिताके समीप जा वह विनीत हो बोला—

सिद्धार्थ—राजन्, मोक्षके हेतु प्रव्रज्या चाहता हूँ, कृपया आज्ञा करे।

शुद्धोदन—[आँसुओसे रुन्धी काँपती आवाज] हे तात, रोको इस

बुद्धिको। यह समय तुम्हारे धर्मकी शरण जानेका नही। यौवनका सुख भोग लेनेसे तपोवन सुखद होता है।

सिद्धार्थ—तपोवनकी शरण न जाऊँ, राजन्, जो चार बातोमे श्रीमान् मेरे प्रतिभू हो—मेरे जीवनपर मृत्युका अधिकार न हो, रोग मेरे स्वास्थ्यका हरण न करे, जरा मेरे यौवनको विकृत न करे, न विपत्ति मेरी इस सम्पत्तिको हरे।

शुद्धोदन—[कुछ चिढकर पर कातर स्वरमे] इस अत्यन्त बढी हुई बुद्धिको तजो, क्रमरहित व्यवसायका उपहास होता है।

वाचक—बोधिसत्त्व अपने महलोमे गया। नाना अलङ्कारोमे विभूषित देवनारियो-सी सुन्दरियोंने वाद्य-नृत्यमे उसका प्रसादन आरम्भ किया। सुगन्धित दीप-वृक्ष निर्वात बल रहा था, कालागुरु और धूपके धुएँसे प्रासाद गमक रहा था। कुमार कञ्चन-शैयापर जा सोया।

नर्तकी १—[दूसरीसे] कुमार निद्रागत हुए, आ, सो रहे अब।

नर्तकी २—आ, निद्रा नादमे कोमल होती है, निस्पन्द सोने दे इन्हे, आ।

[सो जाती है]

[सङ्गीत द्रुततर। निर्वेदसूचक सङ्गीत]

सिद्धार्थ—[जागकर पलगपर बैठता हुआ] आह! सौन्दर्य कितना कुरूप है। निद्रागत लावण्य कितना बीभत्स। निरावृत शरीर जितना ही स्वादु है उतना ही घिनौना। अधर अमृत रसके चषक कहलाते है, उनसे बहती राल्को कामुक नही देख पाता। मदिर अवलोकन कितना आकर्षक होता है, कितना मादक, पर उसका निद्रागत रूप कितना अभोग्य है! मण्डनगत शरीर कितनो छलना है, प्रकृत कितना अशोभन! चारो ओर अस्तव्यस्त पडी इन नारियोमे से प्रत्येक किसी-न-किसीके हृदयमे आँधी उठा देती है, पर इनको इस स्थितिमे कोई देखे! आह कष्ट, हा, शोक, आज

ही महाभिनिष्क्रमण करना होगा। [पलगसे उठकर द्वारके पास जाकर] कौन है ?

छन्दक—मै हूँ, आर्य, छन्दक।

सिद्धार्थ—महाभिनिष्क्रमण करूँगा। अश्व प्रस्तुत करो।

छन्दक—अच्छा, देव।

[घोडेके हिनहिनानेकी आवाज]

[प्रयाणसूचक सङ्गीत]

वाचक—बोधिसत्त्व चला। चलते हुए उसने एक वार शयनकक्षमे झाँका। दासियाँ, सखियाँ जहाँ-तहाँ पडी थी। वस्त्र उनके खुले थे, अस्तव्यस्त। कुसुम-कोमल शैयापर बलती दीपशिखा-सी सोती थी वह कोलिय दण्डपाणिकी गोपा, कपिलवस्तुके शाक्य प्रासादकी कौमुदी यशोधरा, शिशुके मस्तकपर अभयका हाथ रखे, आराध्यको स्वप्नमें सोचती, रोकती। न रुका स्वजन। मार्तण्ड सरीखा शिशु एक वार जनकके अन्तरमे चमका। खीचा उसने उसे सहस्र करोसे। पर स्वजन रुका नही। ससारका स्वजन था वह, चल पडा। रोते विश्वके आँसू पोछने। यह महाभिनिष्क्रमण था। कपिलवस्तु जागा। महामणि खो चुकी थी।

सिद्धार्थ—कन्थक, उठ चल। बुद्ध बननेमे सहायक हो। आज तू मुझे एक रात तार दे। मै सारे लोकको तारूँगा, तुझे भी।

[घोडेके हिनहिनानेकी आवाज]

जाना, कन्थक, ले चलेगा तू मुझे, शाक्य भूमिके परे ? [छन्दकसे] और छन्दक!

छन्दक—आज्ञा, स्वामी।

सिद्धार्थ—साहस, छन्दक, साहस कर। भवबन्धनके काटनेमे सहायक हो,

तेरे बन्धन भी मैं काटूँगा। उड चल, चला अ।, कन्थककी लीक-लीक।

छन्दक—दिशाओंके परे, स्वामी। जब तक तनमें साँस रहेगी कन्थककी लीक न छोडूँगा, न स्वामीकी छाया।

एक धीमी भारी आवाज—मित्र, सिद्धार्थ, मत निकलो। आजसे सातवें दिन तुम्हारे लिए चक्ररत्न प्रकट होगा। दो हजार छोटे द्वीपोंके साथ चारों महाद्वीपोंपर राज करोगे। लौटो, मित्र।

सिद्धार्थ—कौन? यह किसकी आवाज है? कौन हो तुम भला?

आवाज़—वशवर्ती हूँ।

सिद्धार्थ—जाना, काम, जाना, मार हो तुम। जानता हूँ तुम्हें। बार-बार तुमने मुझे बहकाया है, बार-बार। तुम्हारा जाल मैं भेद गया हूँ। फिर भेद जाऊँगा। जाना, मार, जाना, तुम्हें, पर तुम भी जान लो कि मुझे चक्ररत्नसे, राजसे, काम नहीं। मैं तो साहस्रिक लोक धातुओंको विनिन्दित कर बुद्ध बनूँगा।

मार—[**भारी, दूर हटती आवाज**] अच्छा जा, चला जा। पर याद रख, जब कभी तेरे मनमें कामनाजनित वितर्क, द्रोहजनित वितर्क, हिंसाजनित वितर्क उत्पन्न होगा, तब मैं तुझे समझूँगा।

वाचक—अथ स विमलपङ्कजायताक्ष पुरमवलोक्य ननाद सिंहनादम्।
जननमरणयोरदृष्टपारो न पुरमह कपिलाह्वय प्रवेष्टा॥
तब विमल कमलोंके समान विशाल नेत्रों वाले कुमारने नगरकी ओर देख कर सिंहनाद किया—
"जन्म मरणका अन्त देखे बिना कपिलवस्तु नामके इस नगरमें फिर प्रवेश न करूँगा।"
शाक्य और कोलिय छूट गये, रामग्राम भी छूटा। अनोमाके तट-पर वह महायात्री जा खडा हुआ।

दृश्य—४

सिद्धार्थ—छन्दक, इस नदीका नाम क्या है ?

छन्दक—अनोमा, देव ।

सिद्धार्थ—हमारी प्रव्रज्या भी अनोमा होगी, महत्त्वकी, जैसी यह नदी है ।

[फिर घोड़ेको एड़ मार धारा लाँघता हुआ]

सौम्य छन्दक, तू मेरे आभूषणो और कन्थकको लेकर जा, मै प्रव्रजित होऊँगा ।

छन्दक—प्रव्रजित मै भी होऊँगा, देव ।

सिद्धार्थ—तुझे प्रव्रज्या नही मिल सकती, तू लौट जा ।

छन्दक—देव !

सिद्धार्थ—नही मिल सकती प्रव्रज्या तुझे, मै कहता हूँ, नही मिल सकती ।

[छन्दकका लम्बी साँस लेना]

सिद्धार्थ—[अपने आप] मेरे ये केश श्रमणके योग्य नही है । और वोधिसत्त्वके केश काटने योग्य कोई दूसरा है भी नही । इससे मै अपने ही आप इन्हे खड्गसे काटूँगा ।

वाचक—फिर दाहिने हाथमे खड्ग ले वाये हाथसे मुकुट सहित केश पकड वोधिसत्त्वने काट डाले । शेष दो अगुल भरके केश दाहिनी ओरसे घूम सिरसे चिपक गये । जीवन भर फिर वे वैसे ही वने रहे ।

सिद्धार्थ—[आकाशमे मुकुट सहित केश चूडा फेंकते हुए] लो, देवताओ, सम्हालो इन्हे । तुमने मुझे वुद्ध होनेके लिए तुषित स्वर्गसे पृथ्वी पर भेजा था, अव सम्हालो इन्हे । यदि मुझे वुद्ध होना हो तो ये अधरमे टँग जाय, नही भूमिपर गिर पडे ।

छन्दक—आश्चर्य ! आश्चर्य ! केश-गुच्छ तो अधरमे टँग गये । धन्य, देव, धन्य !

सिद्धार्थ—आश्चर्य कुछ नही, छन्दक। बोधिसत्त्वके लिए कुछ भी असम्भव नही।

छन्दक—धन्य, बोधिसत्त्व!

सिद्धार्थ—देख, छन्दक, यह काशीके बहुमूल्य दुकूल भिक्षुके योग्य नही। योगमे युक्त भिक्षुके त्रिचीवर, भिक्षापात्र, छुरा, सुई, कायबन्धन और पानी छाननेका वस्त्र, बस यही आठ वस्तुएँ होती है। सो तू ये मेरे पहलेके वस्त्राभूषण ले।

छन्दक—नही देव, मै इन्हे

सिद्धार्थ—ले, छन्दक, ले इन्हे। तर्क न कर।

[छन्दक लम्बी साँस भरकर वस्त्राभूषण ले लेता है।]

सिद्धार्थ—छन्दक! मेरे वचनसे माता-पिताको आरोग्य कहना। और सौम्य, गरुड समान वेगवान् इस घोडेका अनुसरणकर मेरे प्रति तुमने भक्ति और पराक्रम दिखाये। यद्यपि अन्यमनस्क हूँ परन्तु तुम्हारे इस स्वामिस्नेहने बरबस मेरा हृदय हरण कर लिया है। तुमने मेरा बडा प्रिय किया। आभार मानता हूँ। अब अश्व लेकर लौट जाओ। मै अभीष्ट स्थलको पहुँच गया।

छन्दक—देव!

सिद्धार्थ—सुनो छन्दक, राजाको बार-बार प्रणाम कर निवेदन करना—जरा और मरणके विनाशके लिए मैने तपोवनमे प्रवेश किया है, निश्चय स्वर्गकी तृष्णामे नही, स्नेहके अभावमे नही, क्रोधमे नही। वियोग निश्चित है। पर स्वजनमे वियोग न हो, इसके मात्र उपाय मोक्षकी खोजमे हूँ। मुझे याद न करे।

छन्दक—देव, नदी पकमे फँसे हाथीके समान मेरा मर्म मथ रहा है। आपका निश्चय सुनकर जो मै घोडा ले आया वह भी दैवने मुझसे बलात् कराया। सुमन्तने जैसे राघवको वनमे छोडा था, वैसे ही

आपको तजकर जाना मेरे लिए असह्य हो रहा है। नगरको कैसे जाऊँ ?

[घोड़ेके करुण हिनहिनानेका स्वर]

छन्दक—हा, कन्थक ! रो नही, कन्थक।

सिद्धार्थ—(घोड़ेको प्यारसे छूते हुए) कन्थक, तुमने मुझे तार दिया। जाओ, तुम्हारा शील मानवीय है। जाओ छन्दक ! जाओ कन्थक !

[छन्दकका सिद्धार्थकी परिक्रमा कर घोडेको ले जाना]

[घोडेकी टाप]

सिद्धार्थ—गोपे, जानता हूँ तुम्हारे मर्मकी पीडा। उसी पीडाके शमनके लिए काषाय लिया है, कि तुम्हारी जराविगलित काया स्वय तुम्हे घिनौनी न हो जाय, कि तुम्हारा वत्स जरा-मरणका शिकार न बन जाय। तुम्हारे लिए, तुम्हारेसे ही असख्य वत्सोके लिए विजनमे जाता हूँ। तपसे काया डाहूँगा, बोधिके लिए ज्ञान गुनूँगा, कि लौटूँ तो दुःखके शमनका उपाय लेकर, जराकी औषधि लेकर, अमरता लेकर।

[देवताओंकी आवाज धन्य ! धन्य !!]

और दिशाओ, सुनो। परिकर बाँधकर प्रासादसे निकला हूँ, प्रव्रज्यासे जो निकलूँगा तो केवल निर्वाणमे प्रवेश करनेके लिए। और, देवताओ, तुम भी सुनो ! यदि जन्म-मरणके अन्तका उपाय न ढूँढ सका, जनहित, जनसुखके साधन प्रस्तुत न कर सका, सबुद्ध न हो सका, तो देवो, नगरको न लौटूँगा, न लौटूँगा।

नेपथ्यमे—"नाह प्रवेसि कपिलस्य पुर अप्राप्य जातिमरणान्तकर
स्थानासन शयन चक्रमेण न करिष्य ह कपिलवस्तुमुख।
यावन्न लब्धवरबोधिमया अजरामर पदवर ह्यमृत॥"

रूपमती और बाज़बहादुर

दृश्य १

[उज्जैनीमे सिप्रा तटका प्रासाद। नदीकी ओर खुलनेवाली खिडकियाँ। दूसरी ओर फैला बरामदा, जिसमे लटकते पिंजडोमे चहकते पक्षी—शुकसारिकाएँ। नीचे नजरबाग।
चबूतरेसे हल्के उठता प्रभातीका स्वर। बाजोके सुरमे मिली मानव कण्ठकी हल्की ध्वनि। सामने दूर क्षितिजसे उठता सूरजका लाल गोला। रूपमती अभी सो रही है। नदीके ऊपरसे बहती गीली बयार धीरे-धीरे रूपमतीके जहाँ-तहाँ खुले अगोको परसती है, छनकर आती लाल धूपके स्पर्शसे चेहरा लाल कमल सा खिल उठता है।]

रूपमती—[अलसाई पलकें उठाती हुई, करवट बदलती] हाय राम! इतनी धूप निकल आई ?

मंजरी—सो जा, सो जा, रूपा, पिछली रात देरसे सोई थी ना!

रूप०—[अलसाती हुई] अरी, अब क्या सोऊँ ? कितना तो दिन चढ आया। और देख—

मंजरी—अरी, सो जा, अभी पर्दे खीचे देती हूँ।

[उठती है]

रूप०—[अँगड़ाती हुई पडी-पडी] दिनकी ललक है, कही पर्दोसे ढकती है, मंजरी ? और सूरजकी हजारो किरने!

मंजरी—सूरज हजार हाथो तुम्हे भेट रहा है, रानी, जभी तो पुलक रही हो, अनारकी डहकती कली जैसे खुल गई है।

रूप०—अच्छा, अच्छा, बन्दकर अपनी कविता। [सिर बिस्तरसे जरा उठाती उठाती] भला तू कर क्या रही है ? और बेला कहाँ है ?

मजरी—पान लगा रही थी। (**पास आकर पान देती हुई**] यह लो, यह गिलौरी। बेला पछियोको दाना दे रही है। [**जोरसे बाहरकी ओर मुँह करके**] अरी, बेला ! ओ बेला ! कहाँ मर गई !

बेला [**दूरसे**]—आई, मजरी ! [**आती है**]

रूप०—बेला, ले तू मेरा पान खा ले। मुझे अलकम लग रही है। ले, लेले [**हाथका पान बढ़ाती है**]

मजरी—जबान तो कैंची सी चलाये जा रही है और मुँह चलाते अलकम लग रही है !

रूपमती—ले, ले बेला, पान यह। भला कर क्या रही थी ?

बेला—[**पान लेकर मुँहमे डालती हुई**] जरा पछियोको चारा बाँट रही थी। पर कुछ पूछ मत रानी। निगोड़ी मैनीने तो आज गजब कर दिया।

रूप० और मजरी [**एक साथ उत्सुकतासे**]—क्या हुआ ? क्या हुआ ?

बेला—अरी, बस क्या कहूँ। निगोड़ीके ठेस देखकर मै तो दग रह गई।

मजरी—अरी कुछ बता तो। तेरे नखरे किससे कम है भला ?

बेला—तुझसे। जब मानसिंह आता है तब कैसे भवै नचाती है, जैसे

रूप०—ले, अब तू ही लहक उठी।

देखो, रानी, यह तुम्हारी मैनी है न ?

०—सारिका न ?

ला—हाँ, सारिका, ऐसा हुआ

जरी—तूने तो मैना-मैनी एकसे कर दिया था न ?

बेला—[जल्दी जल्दी] हाँ। ऐसा हुआ कि अभी पड़ी हुई थी, आँख खुल गई थी, कि मैनीने रोजकी तरह पुकारा—'जागो रे जागो ! जागो रे जागो !' पहले तो मैने कान न दिया। पर जब मैनीने 'जागो रे जागो !' की रट लगा दी तब मै उठी। दाना लिये जो उधर पहुँची तो देखती क्या हूँ कि मैनी आज रोजकी तरह

कमरेकी ओर नही देखती, सामनेके पिंजडेकी ओर मुँह किये जैसे अपने नरको पुकार रही है।

रूप०—अच्छा !

मजरी—और नर ?

बेला—और नर ? नरकी न पूछो। बावला, जैसे बावला हुआ जा रहा है। पख फडफडाता पिजडेके द्वारपर बार-बार चोच ठकराये जाय, टकराये जाय। जरा सी की चोच और चाँदीका पिजडा।

मजरी—बेचारा !

रूप०—फिर ? फिर ?

बेला—फिर मैंने दोनोको एकमे कर दिया।

रूप०—एकमे कर दिया ?

बेला—हाँ, नरको भी मैंनी वाले पिजडेमे जा डाला।

मजरी—तब ?

बेला—मैंनी सहसा चुप हो गई। उसकी ओरसे मुँह फेर लिया।

रूप०—अच्छा, देरसे पुकारती रही थी न।

बेला—देरसे पुकारती रही थी। पर उसका दिमाग तो देखो—चुप कर गई। और बेचारा नर बार-बार उसकी गरदनपर अपना सिर, अपनी गरदन रखे, अपनी चोचका चारा उसकी चोचमे देना चाहे, पर मैंनी कि कोप किये ही जाय, कोप किये ही जाय।

मजरी—अरे यह तो आदमीकी तरह !

बेला—आदमीकी तरह, मजरी, बिलकुल आदमीकी तरह। मैंना इस बगलसे उस बगल जाय, उस बगलसे इस बगल आये, पर मैंनी जैसे मन मारे, सुध बुध खोये, चोच लटकाये चुप।

मजरी—निगोडी !

बेला—निगोडी सुनती ही नहीं।

रूप०—अरे इतना मान तो मानमिहमे मजरी तक नही करती, बेला।

[रूपमती बेला खिलखिला उठती हैं]

मजरी—अच्छा! अच्छा देखूँगी। अरे तू तो अपने रसियाको वो वो नाच नचायेगी कि वही जानेगा। जरा डोरा पड तो जाने दे।

रूप०—हाँ, बेला, फिर क्या हुआ?

बेला—फिर क्या होता, रानी? मैनी कोप किये बैठी है और मैना वैसे ही उसके चारो ओर मँडरा रहा है।

रूप०—चल तो देखे जरा।

[तीनो बरामदेमे जाती हैं। मैनी वैसे ही कोप किये है, मैना उसे जैसे मना रहा है।]

रूप और मजरी—हाय राम।

बेला—देखो तो जरा निगोडीको।

रूप०—[मैनीसे] मारिके, मानो न—यह तुम्हारा महैना तुम्हे कितना मना रहा है, कितना बेचारा है यह!

[मैनी फिर जाती है, मैनेकी ओर पूँछ कर लेती है]

तीनो—अरे, वाह रे तुम्हारे नखरे!

मंजरी—क्या लेगी चुनरी? अँगिया?

—नौलखा हार!

०—फिर मानमिहमे माँग!

—चल चल। बडी आई नौलखा हार देने।

प०—अच्छा बेला, एक काम कर, मैनावाला वह खाली पिंजरा ता जरा उठा।

[पिंजडा उठाकर बेला रूपमतीके हाथमे देती है। रूपमती दोनो पिंजडोके मुँह एक दूसरेसे लगा देती है। पुचकारकर मैनाको अपने पिंजडेमे बुलाती है। मैना नही जाता, फिर हाथ की उँगलियोंके सहारे उसे उसके पिंजडेमे खींच लेती है।]

मजरी—अच्छा, यह तो खूब सोचा।

वेला—[मैनीसे] ले अब, चला नैनतीर ! कर मान अब जरा।

रूप०—अरी बावली, मानका नाम न ले, वरना कही मजरीके भी न चढ जाय नामका जादू।

मजरी—[मुँह चिढा कर दुहराती हुई] हाँ-हाँ, कही मजरीके भी न चढ जाय नामका जादू !

वेला—वह देख, उधर !

[सब मैनीको देखती है। मैनी अपने पिजडेके दरवाजेपर चोच बरसाये जा रही है। टक-टककी आवाज]

मजरी—[प्यारसे] दे दो, रूपा, उसे उसका चहेता। बडा उपकार मानेगी।

रूप०—हाँ, हाँ, तूने जो बडा उपकार माना ! तुझे भी तो कुछ दिया था। अच्छा देखें।

[रूपमती मैनाको फिर मैनीके पिजडेमे कर देती है। मैनी अबकी लपक कर मैनाकी गरदनपर अपना सिर रख देती है।]

वेला—देखा, कैसे सिर उसकी गरदनमे गडाये जा रही है ?

मजरी—या खुदा, मुराद बार आये, हमारी रानी रूपकी भी !

रूप०—अच्छा ! अच्छा ! यह तो सलीमशाह बन गई !

मजरी—पर इस कलूटीके नखरे तो देखो !

वेला—अरे कलजुग है न ! बस मानुसका तनभर नही पाया है, वरना आदमीसे पछी कम क्या है ?

रूप०—कलजुग नही, वेला, बसन्त जो है, पराग जो झर रहा है ! बौराये आमोको नही देखती क्या ?

[अमराइयोमे सहसा कोयल कूक उठती है…कू ऊ ऊ ! कू ऊ, ऊ !]

बेला—ले कूक उठी पापिन, मजरीकी दुखदायी मौत बौराये आमोंकी झुरमुटमें ।

[मजरी गा उठती है—]

मजरी—

मनवाँ क बाती सनेह क सींचल
लहकि बरे मधु रतिया,
कोइलि सौति सतुर बनि टेरे
सालि उठे नित छतिया,
राति बिजन मन जियरा डोले
कसकि उठे पिय बतिया,
अमवाँ की डरियाँ भँवर गुँजारें
मदन करे थरहरिया,
नेह गरे निसि बागर अँखियन
डहकि डहकि लिखूँ पतिया,
मदन मोहाइल कान्ह कोहाइल
कैसे कटे दिन रतिया ?
डगर डगर बन बिकसत आवे
जगर मगर करे रतिया,
आव सजन मधु मास सेराइल
दरस देखाव सुरतिया ।

[फेड आउट]

दृश्य २

[माडूका महल। झीलसे उठती हवा बारहदरीका कोना-कोना भर देती है। मालवाका सुल्तान बाजबहादुर गावतकियेके सहारे बैठा अपने बचपनके दोस्त खफ़ीसे बयान करता जा रहा है—]

बाज—इतनी रूपसी, खफी, कि हूरे शरमा जायँ, चितेरा अपना भाग सराहे!

खफी—जहाँपनाहका हरम इन्दरका अखाड़ा है, आलमगीर।

बाज—सूना है, खफी, मेरा हरम सूना है। पतझड़की तरह सूना, मेह बरस जानेपर आसमानकी तरह उदास। काटता है वह हरम, खफी।

खफी—जाहिर है, आलमगीर, वरना जन्नतमे इस कदर मनहूसियत छाई रहती!

बाज—जन्नत! जन्नत यहाँ कहाँ, खफी? जन्नत तो वह ज़मीन है जिसपर रूपमतीके पैर पड़ते है। काश कि वह यह दर्द जान पाती, जान पाती कि बाज़की दुनियामे जलज़ला आ गया है, कि उसके दिल-पर बिजलियाँ टूट रही है!

खफी—मनपर काबू करे, जहाँपनाह।

बाज—[सरककर खफीका हाथ पकड़ता हुआ] मनपर काबू क्यों-कर करूँ, दोस्त? मनमे तो आँधियाँ चल रही है, तूफान अँगड़ा रहा है। कैसे करूँ काबू मनपर? कर न कोई हिकमत, पखेरू तूफानमे पनाह ले।

खफी—हिकमतकी क्या कमी, शाहआलम? बाजके पंजोकी बिसात छोटी है।

बाज—बाजके पंजे अब न खुलेंगे, सफी। उनके खूनी नाखून गिर पड़े हैं। तुमने कभी प्यार नहीं किया, मेरे दोस्त, न जाना वह राज, ताकत जिसमें दोजानू हो जाती है, तलवार बेकार। मैंने [illegible], लगता है, कभी मुहब्बत नहीं की, बस अस्मत लूटी है, आज खुद लुटा जा रहा हूँ। [लंबी आह]

सफी—इतने बेकरार न हों, जहाँपनाह। बन्दा जाता है और खुदाने चाहा तो हुजूरकी मुराद पूरी होते देर न लगेगी।

बाज—सुनो, सफी। समझी नहीं तुमने हकीकत। ताकत या फरेबसे नहीं, रूपको प्यारसे जीतूँगा, दर्दसे। पर काश वह जान पाती मेरा जलना, जान पाती कि बाजके तेवर उन भवोंके शिकार हो गये हैं जिनमें सिप्राकी लहरियोंके बल हैं, कमानकी लचक है, नजरकी खम है।

सफी—मुहब्बत एक मुसीबत है, आलमगीर, और शायरी आगमें ईंधनका काम करती है।

बाज—सही, दोस्त। शायर न होता तो शायद इतना बेपनाह न होता। शायरी जिस्मका पोर-पोर रोआँ-रोआँ खोल देती है। अदनी-से-अदनी बात समुन्दरकी तरह यादमें उमड़ आती है। उमड़कर दिलको बेताब कर लेती है। एक-एक अदा रूपमतीकी याद है, सफी, एक-एक अन्दाजपर मन लट्टू है। सुनो, जाते-जाते जो उसने आदाब किया, सवारीके गुजरकर जो कमान सीना तानकर बाजकी जरा-सी जानको चीरता चला गया। [illegible] समझते, सफी?

सफी—जहाँपनाह, समझ नहीं आता क्या कहूँ, [illegible] हजरतके हरममें आ बिराजें। पर क्या आलमगीरको खुद अपनी ताकतका असर नहीं मालूम? क्या अजब जो उसने भी [illegible] अपना जादू डाल दिया हो। आखिर बाजका [illegible]

कितनी ही अस्मतकी धनी लाजवन्ती खातूनोके हियेका भेद बन गया है। फिर वह तो

बाज—अजब नही, खफी। उसका लौट-लौटकर देखना कुछ हद तक इसका सबूत भी है। पर जिस बातकी ओर तुम्हारा इशारा है उसका भरम छोड दो, मेरे दोस्त। 'पातुरकी बेटी' ही कहना चाहते हो ना, खफी? है पातुरकी बेटी वह रूपमती, पर मानो मेरी बात—बडी-बडी पाकदामन खातूनोसे कही जियादा पाकदामन, उनमे कही बढकर अस्मतवाली। क्या सुनी तुमने कभी कोई ऐसी बात जो उसके आबरूमे बट्टा लगाये? भूल गये गुजरातके सलावत का किस्सा?

खफी—नही, जहाँपनाह, कभी कोई ऐसी बात नही सुनी जो उसके आबरू को बट्टा लगाये और सलावतकी मुँहकी खाई तो हिन्दुस्तान और दकनका मजाक बन गयी है, कौन नही जानता उसे? पर करूँ क्या, यह समझमे नही आता।

बाज—एक काम करो दर्दका इज़हार खतमे करता हूँ, उज्जैन कासिद भेजो।

खफी—जैसी इर्शाद हुजूरकी।

[बाजबहादुर लिखता है, फिर धीरे-धीरे पढता है—]

उडत गगन पाखी प्रबर, लख्यौ रूप बिसवान।
पीर बिकल नैना सजल, तरपत बाज परान ॥
रैन भई पीरा बढी, गुनमति कहो बखान।
कस हैरी बिरहा कटे, कस निसि होय बिहान?

[फेड आउट]

दृश्य ३

[सिप्रा तटका रूपमतीका प्रासाद । नजरबागका बारजा । सिप्रा कलकल बह रही है । सध्या पच्छिमी आकाशमे कमजोर किरनो वाले सूरजके लाल गोलेको उठाये हुए है । रूपमती सखियो सहित बैठी है । हवा नदीके जलको परसती मन्द शीतल बह रही है पर आषाढकी गर्मीके लिए वह काफी शीतल नही है । इससे मजरी गुलाबजलमे भीगा खसका पखा उसे झल रही है । बेला हालकी नहाई रूपमतीके लम्बे काले चमकते घुंघराले भीगे बालोको धूप-अगुरुके धुएंमे सुखा रही है । तीनो चुप हैं ।]

रूप०—[धीरे-धीरे] सिप्रे, तुम्हारे जलने कितनोके सुरत शिथिल गात शीतल किये है, तुम्हारे तटके कुंजोने कितनी ही विरहिणी प्रमदाओका क्लेश हरा है, अपनी इस सगिनीका क्लेश न मेटोगी ?

[मजरी और बेला चुपचाप आंसू ढालती है । बेला सिसक उठती है ।]

रूप०—जीवन बहता है तुम्हारे अकमे, सगिनि । तुम्हारी ही लहरोपर चढकर मधुर उत्सवमे राजा आया था । रूठ कर गया [illegible] । कितना मदिर था उसका अवलोकन, कितना मधुर था उसका दर्शन, कितना मादक होगा उसका विलास !

मजरी—रहे, विश्वास न त्या। आवेगा राजा। प्रेमका [illegible] रूपका रसिया । धीरज धर, रानी ।

रूप०—विश्वास क्या, मजरी ? इस [illegible] विश्वास क्या ? [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

कमलवनमे अभिराम विहरनेवाले मदमत्त गयन्दका विश्वास कैसा, भोली मजरी ? जिसके रनिवासमे उर्वशीके शृगार-कुसुम उपेक्षाके उच्छ्वासोंसे कुम्हला जाते है, रभाका मान कभी खडित नही होता, मेनकाका सौरभ बासी पड जाया करता है, उसका, कहती है, विश्वास करूँ ? कहो न, मजरी, उठ आये डूबता धधकता आगका वह गोला अस्ताचलके पीछेसे, कहो सिप्राकी धारा मुड-कर पीछेको बहने लग जाय, शायद विश्वास कर लूं पर कि वह छलिया सुलतान लौटेगा, विश्वास नहीं होता। [उच्छ्वास, बेला सिसकती जाती है।]

मजरी—नही, नही, रूपा, जानो वसन्त जैसे अपनी कोपलोंके साथ लौटता है शरद् जैसे अपने विलासके साथ लौटता है, निदाघ जैसे मदालस लिये लौटता है, वर्षा जैसे वीरबहूटियाँ लिये। लौटेगा बाँका सुलतान भी वैसे ही। गाँव नगर आज गूँज रहे है इस सवादसे कि भौंरा कँवलमे बँध गया है, कि भौंरा बाजबहादुर है, कि कवल रूपमती है। दिनोकी देर है, रानी। धीर धर, सकट कटेगा।

रूप०—कहाँ भटक रही है, मजरी, किस सपन देशमें खोई है भला ? पुरुषका विश्वास कैसा, फिर ऐसे पुरुषका जिसके मनोरथोंने कोई सीमा न जानी ? जिसके पिंजडेमे पछी अपने-आप जा बैठा ? जिसके जालमे मृगी स्वत बँध गई ? [फिर बेलासे] और देख बेला, बन्द कर यह शृङ्गार-मण्डन। एक आँख मुझे नही सुहाता यह। वेशका फल प्रियके उसे आँख भर देख लेनेमे है। [मजरीसे] और मजरी, मुझे उस गाँव-नगरमे गूँजते सवादका भी कुछ भरोसा नही।

बेला—महाकालका भरोसा कर, रूपा। ब्रह्मा भालपर लिखते है महा-काल उसे काटते है, रानी। तुम्हारा क्लेश भी काटेंगे भवानी-

पति। पूरेंगे तुम्हारा भी मनोरथ, वह औघड़ वरदानी। माँगो उनसे।

रूप०—माँगती हूँ महाकालसे। हे घट-घटव्यापी महाकाल, लाज रखो अपनी, दे दो अपना राग मगन मुझे। सदा तुमने भावको चीन्हा है, सतीका तुमने मान रखा है। जो तो रूपमतीने पातुरकी बेटी होकर भी कभी अपने हियेमें पुरुषकी छाया डोलने दी हो तो उसका हिया झुलस जाय, पर जो उसमें उसने बाजबहादुरकी अकेली मूरत पधराई हो तो, हे देवता, उसके हियेसे तुम पैठो, कि चकवा-सा वह साजन पुरइनकी पात हटाता चकोरी जा मिले। उसके घटमें व्यापो नाथ!

[घोड़ेकी टापोंकी आवाज। सहसा सन्नाटा, सबका चौंकना।]

[बेला! ओ बेला!]

[बेला 'आई!' कहती दौड़ी आती है। फिर रूप भरी भागती हँसती आती है। उसके हाथमें बन्द लिफाफा है। दोनों उत्सुक उसे देखती हैं।]

बेला—[हाँफती हुई] क्या सोचा, रूपा? बात रा, क्या बाती?

मंजरी—ओ, रूपा, सुन लिया महाकालने। सिप्रा मैयाने सुनी दो।

[रूपमती लिफाफा खोलकर पत्र पढ़ती है। पत्र हाथसे धीरे-धीरे गिर जाता है। चेहरेपर चाँदनी छा जाती है। होंठ खुल जाते हैं, आनन्दके आँसू चुपचाप भरने लगते हैं। पत्र उठाकर रूपमती बेलाको दे देती है। मंजरी झपटकर बेलासे पत्र ले लेती है। पढ़ती है—]

मंजरी—उमड़त गगन पावस प्रबल, लायो रूप निधान।
पीर विकल नैना सजल, तरसत आज परान॥
रैन भई पीरी घटी, गुनसरि बढ़ा बखान।
कब धौं विरहा घटै, कब निसि होय बिहान?

मजरी—[हँसकर] देखा, रूपा, कहती थी न ।

[दोनो रूपमतीसे लिपट जाती हैं । आनन्दाश्रु उमड पडते हैं । तत्काल भाव भाषा धारण करते है । रूपमती बाजबहादुर के दोहोके उत्तरमें अपने दोहे लिख देती है—]

रूप०—

रूप न जाने कविकला, काम न बान कमान ।
कौन जतन सूचित करे, तुम सम चतुर सुजान ?
अग अग काया विकल, कन कन अगिन समान ।
भवन सिधारे बाज जब, तब निसि होय विहान ॥

वेला—धन्य, रूपा, धन्य !

मजरी—वाह रानी, क्या दोहे लिखे है ! सोनेको यह सुगन्ध मिली है, बाजको यह रूपमती ।

रूप०—[भरे कण्ठसे] सब महाकालकी दया है, मजरी, सिप्रा मैयाकी माया । अक्षय नीवी दूँगी, औघडदानी, कि तुम्हारे देवलमे सौ बरसतक घीकी बत्ती जलती रहे । और सिप्रे, जबतक यहाँ रहूँगी तुम्हारे तीर भी घीके दिये जलाऊँगी, चुनरी चढाऊँगी । तुम्हारे ही आशीर्वादसे मेरी आस पूजी है, मेरा उदयन रीझा है । जैसे तुमने मेरा अन्तर जुडाया, तुम्हारा हिया भी सदा जुडाता रहे ! चाटुकार पवन सदा तुम्हे अपनी कोमल परससे लहराता रहे ! [वेला से] और वेला, दे आ दूतको पाती । [वेला पत्र लेकर चली जाती हैं । घोडेकी टापोकी आवाज़ ।]

[फेड आउट]

बाज०—जानो, रूप, अक्षय नीवी हो तुम मेरी, जिसे पा लेनेपर फिर कुछ पाना शेष नही रह जाता।

रूप०—वह उधर देखते हो, बाज, झीलपर अम्बर झरता जा रहा है, और

बाज०—और मेहकी उस झीनी झरझरके पीछे, लगता है, जैसे कुछ है।

रूप०—है, बाज, उस झीनी झरझरके पीछे कुछ [तनिक रुककर] पुरातन पुरुष ओर प्रकृति, सदाके सहचर अम्बर और धरा।

वाचिका—और इस प्रकार वर्षो उनके गात आनन्दमे पुलकित होते रहे, एक दूसरेकी परससे सिहरते रहे। पर आनन्दका वह वैभव दैवको न रुचा। दैव दारुण है, दम्पतिका सुख उसे असह्य है। चक्रवाक-चक्रवाकी उसे नही भाते, हसके जोडे उसे नही भाते, बाज और रूपका दाम्पत्य भी उसे नही भाया। उनपर भी उसने चोट की।

वाचक—दिल्लीपति अकबरने मालवापर अपनी हसरतभरी नजर डाली। मालवाकी भूमि सोना उगलती थी। उस भूमिके स्वामी कबसे पठान होते आये थे। अकबर उसकी आजादी सह न सका। आदम खाँको उसने मालवा भेजा। आदम उज्जैनी आदिपर अधिकार करता गढमाण्डू पहुँचा। राजधानीपर उसने घेरा डाला। बाजका विलास इस तीखी चोटसे तिलमिला उठा। वह सेना लिये गढके सिंहद्वारसे बाहर आया। घमासान छिड गया।

वाचिका—घायल बाजको लिये सेना गढमें लौटी। रूपमतीका मन कातर हो उठा। उसने महाकालको सुमिरा। एक ओर वह स्वामीकी सेवा करने लगी दूसरी ओर गढकी रक्षा। नित्य वह बाजबहादुर-को चित्तौरमे शरण लेनेको कहती, नित्य वह मुकर जाता। पर एक दिन जब रूपसे और न रहा गया उसने अपनी शपथ धराकर बाजको भागनेको मजबूर कर दिया। बाज फिर और उसे न टाल सका। उसी भागनेकी रात—

बाज़—वही तो डर है, रूप ! उसे, मेरी अस्मतको, हाथ न लगा सकनेका जो मतलब है, उसपर हजार बाज कुर्बान है। काश कि तुम हाथ लगाने देती किसीको, मेरी अस्मतको ही सही !

रूप०—और देर न करो, मेरे मालिक। भागो, वरना रूप तुम्हारे सामने ढेर हुई जाती है। भागो !

बाज—[जाता हुआ] अच्छा। चला, रूपा, बाज तुम्हारा चला। माफ करना मुझे, रूप ! मेरी संगदिली माफ करना, मेरी बुज-दिली माफ करना ! चला, विदा ! अल्विदा !

रूप०—जाओ, मेरे राजा, मेरे स्वामी, जाओ ! राहके तुम्हारे काँटे फूल हो जायँ ! रक्षा करना भवानी, मेरे राजाकी ! महाकाल, तुम्हारा ही दिया है, कहीं छीन न लेना !

[पिछले द्वारका खुलना। घोड़ेकी टापोकी हल्की आवाज। रूपमती कुछ देर अँधेरेमे गढकी दीवारके पास खडी रहती है, ऊपर चढकर देखती है। अँधेरा है, कुछ दिखाई नही पड़ता। बस घोडेकी टापकी हल्की आवाज सुन पडती है। धीरे-धीरे रूपमती बोलती है—]

रूप०—घोडा कितना भाग्यवान है, रूप कितनी अभागी !

रूपमती दुखिया भई, बिना बहादुर बाज।
अब जिय तुम पर जात है, यहाँ कहाँ है काज ?

दृश्य ५

वाचिका—बाज़ चित्तौर चला गया। राणाने उसे शरण देकर अपना पत रखा। उधर माण्डूमे आदम खाँने कहलाया कि अगर गढका द्वार न खुला तो गढ बारूदसे उडा दिया जायेगा। रूपने गढकी रक्षाके लिए, प्रजाकी रक्षाके लिए, गढका द्वार खोल दिया। पर आदमको उससे सन्तोष न हुआ।

वस्त्र पहने, कीमतीसे कीमती जवाहरात। और पलगपर लेट आदम खाँका इन्तजार करने लगी। आधी रातका सन्नाटा जब गढपर छाया, पहरुए जब ऊँघने लगे तब आदम चुपचाप रूपमतीके महलो आया। वेलाने उसे रूपमतीका कमरा इशारेसे बता दिया। कमरेमे झाड चमक रहे थे।

वाचिका—उनकी रोशनीमे आदमने देखा—रूपमती पलगपर पडी सो रही है, रात आधी चली जानेमे शायद उसकी पलके नीदसे बोझिल हो आई है। पर जो उसने पलगका पर्दा उठाया तो चीखकर दो कदम पीछे हट गया। उसकी चीख सुनकर भी कोई पास न आया। वह था और वह लाश थी और उस लाशकी कहानी गढपर छाई थी, जो आज भी माण्डूके वीरानेको भर रही है।

o

क्रौंच किसका ?

दृश्य १

[राजा शुद्धोदनका महल। राजा, अनेक अभिजातशाक्य, अभिजात-पुत्रोके आगे सिद्धार्थ शान्त खडा है, बायें कन्धेसे धनुष लटक रहा है, पीठपर बँधे तूणीरसे बाणोके ककपत्र झाँक रहे हैं। कुमारके दाहिने हाथमे एक बाण है जिसका पख उसके कन्धेसे लगा है और उसका फलक वह नाखूनसे हल्के-हल्के रगड रहा है।]

राजा—प्रसन्न हूँ, कुमार। तुम्हारे हस्तलाघवने आज तुम्हारे शत्रुओका मुँह बन्द कर दिया।

सिद्धार्थ—मेरा कोई शत्रु नही है, पिता।

राजा—सही, कुमार, पर शका दूर हुई।

सिद्धार्थ—शका कैसी, राजन् ?

राजा—कुछ लोगोने तुम्हे बदनाम करनेका प्रयत्न किया था।

सिद्धार्थ—वह क्या, राजन् ?

राजा—यही कि तुम प्रासाद-वैभवमे पलते हो, कि तुम निर्वीर्य हो, प्रमादी हो, कि प्रासादगत व्यसनोने तुम्हारे शस्त्र-कौशलको कुण्ठित कर दिया है। पर आज जो तुमने सारे शाक्य-किशोरोको अपने लक्ष्य-वेधसे निस्तेज कर दिया है, उससे वह निन्दा निर्मूल हो गई है। तुम कपिलवस्तुके एकवीर हो। प्रसन्न हूँ, कुमार।

सिद्धार्थ—देवकी प्रसन्नतासे सतुष्ट हुआ, पर निन्दा निर्मूल हुई, इससे कुछ विशेष आह्लाद नही होता।

राजा—आह्लाद होना चाहिए, कुमार। क्षात्र-व्यवहारपर आक्षेप शाक्य-किशोरके लिए अचिन्त्य होना चाहिए। यशस्वी हो। लो अर्घ्य, तिलक लो। पुनेधा।

राजा—देवोपम थे वे राजर्षि, कुमार, उनकी बात छोडो।

सिद्धार्थ—उनमे असाधारण कुछ नही मानता, देव, मनुष्यकी मेधा पूर्वापर नही मानती, उसका लाभ सबको है, उसकी कोई परिधि नही, राजन्।

राजा—शस्त्र-कार्य शाक्य कुमारोकी परम्परा कपिल मुनिके ही समयसे, प्रथम इक्ष्वाकुके कालसे ही, चली आती है, कुमार। वर्ण-व्यापार-से विरत न हो, सिद्धार्थ! शस्त्र-व्यापार शाक्य-कुमारके लिए वैसे ही सहज है जैसे पुरोधाका यज्ञमे पशु-मारण-कर्म।

सिद्धार्थ—फले पशु-मारण-कर्म पुरोधाको, राजन्! पशु-मारण-कर्म मेरे लिए यज्ञ-अयज्ञ सर्वत्र गर्हित है। और शाक्य-कुमारका सहज शस्त्र-व्यापार मैं तज चुका हूँ—मनसे, वचनसे, कर्मसे।

पुरोहित—कठिन हो, कुमार!

सिद्धार्थ—ध्रुव, महर्षि। दारुण कर्मसे विरत हूँ।

राजा—कुमार गरजते सिहोंके विकराल फैले मुखोको तुमने बाणोसे भर दिया है।

सिद्धार्थ—सही, राजन्, पर लक्ष्यकी मृगीने जब अपने कर्णायत नयनोको पसार मुझे देखा है तब आकर्ण खिची धनुषकी मेरी प्रत्यचा सहसा शिथिल हो गई है, मै लौट पडा हूँ। और असहाय मृगीका वह दीन अवलोकन अन्तरको सालता रहा है। ना राजन्, वह कर्म मुझसे न होगा।

राजा—मृगीको न मारो, कुमार। मात्र हिंस्र जन्तुओको अपने शरका लक्ष्य बनाओ। सहमत हूँ।

सिद्धार्थ—मै सहमत नही हूँ, गुरुवर। हिंस्र-अहिंस्र प्राणवानोकी सज्ञा है, बाणहत सिह और शरविद्ध मृगीमे मेरे लिए कोई अन्तर नही है। दोनो ही अपने मरणमे निस्पन्द है, अपनी पीडामे कातर!

[लोगोमे फुसफुसाहट, हलचल]

पुरोहित—अर्घ्य-तिलक प्रस्तुत है, राजन् । कुमार लें ।

[कुमार स्थानसे नहीं हिलता, निश्चल खड़ा है । पुरोहित जब उसकी ओर अर्घ्य-तिलककी सामग्री लिये बढ़ता है तब वह अपना मुँह उधर फेर लेता है । शाक्य तरुणों और वृद्धोंमें फुसफुसाहट होने लगती है । राजा कुछ रुष्ट हो जाता है ।]

राजा—क्या बात है, कुमार ?

सिद्धार्थ—[नीचे सिर किये] आज्ञा, देव ?

राजा—अर्घ्य-तिलकसे उदासीनता क्यों ? इनके प्रति शाक्य-किशोर नत-मस्तक होते हैं ।

सिद्धार्थ—नहीं, राजन् ।

राजा—फिर बात क्या है ? पुरोधाकी यह अवमानना कैसी ?

सिद्धार्थ—देव, दोनोंके प्रति नतमस्तक हूँ, अर्घ्यादिके प्रति भी, पुरोधाके प्रति भी । पर जिस कौशलके परिणामस्वरूप आज मेरा यह गौरव बना है उससे विरत हूँ ।

राजा—क्या ? शस्त्र-व्यापारसे ?

सिद्धार्थ—शस्त्र-व्यापारसे, राजन् । [लोगोंकी फुसफुसाहट]

राजा—क्या कहते हो, कुमार ! क्षात्र-धर्मकी निन्दा न करो ।

सिद्धार्थ—क्षात्र-धर्मकी न तो मैं निन्दा करता हूँ, राजन्, न स्तुति । परम्पराका निर्वाह मात्र करता हूँ । हाँ, उस परम्पराने निःसन्देह क्षात्रधर्मको तज दिया है ।

राजा—नहीं समझा, कुमार ।

[खड़े लोगोंमें कुछ हलचल]

सिद्धार्थ—देवका सब जाना है, राजन् ! मैं राजर्षियोंकी बात कर रहा हूँ—पार्श्वकी, अश्वपति कैकेयकी, प्रवाहण जैवलिकी, अजातशत्रुकी, जनक विदेहकी । क्या उन्होंने शस्त्रकी धार कुण्ठित कर चिन्तन-को अपना इष्ट नहीं बनाया ? वह परम्परा मुझे मान्य है देव !

राजा—देवोपम थे वे राजर्षि, कुमार, उनकी बात छोडो।

सिद्धार्थ—उनमे असाधारण कुछ नही मानता, देव, मनुष्यकी मेधा पूर्वापर नही मानती, उसका लाभ सबको है, उसकी कोई परिधि नही, राजन्।

राजा—शस्त्र-कार्य शाक्य कुमारोकी परम्परा कपिल मुनिके ही समयसे, प्रथम इक्ष्वाकुके कालसे ही, चली आती है, कुमार। वर्ण-व्यापार-से विरत न हो, सिद्धार्थ! शस्त्र-व्यापार शाक्य-कुमारके लिए वैसे ही सहज है जैसे पुरोधाका यज्ञमे पशु-मारण-कर्म।

सिद्धार्थ—फले पशु-मारण-कर्म पुरोधाको, राजन्! पशु-मारण-कर्म मेरे लिए यज्ञ-अयज्ञ सर्वत्र गर्हित है। और शाक्य-कुमारका सहज शस्त्र-व्यापार मै तज चुका हूँ—मनसे, वचनसे, कर्मसे।

पुरोहित—कठिन हो, कुमार!

सिद्धार्थ—ध्रुव, महर्षि। दारुण कर्मसे विरत हूँ।

राजा—कुमार गरजते सिंहोके विकराल फैले मुखोको तुमने बाणोसे भर दिया है।

सिद्धार्थ—सही, राजन्, पर लक्ष्यकी मृगीने जब अपने कर्णायत नयनोको पसार मुझे देखा है तब आकर्ण खिची धनुषकी मेरी प्रत्यचा सहसा शिथिल हो गई है, मै लौट पडा हूँ। और असहाय मृगीका वह दीन अवलोकन अन्तरको सालता रहा है। ना राजन्, वह कर्म मुझसे न होगा।

राजा—मृगीको न मारो, कुमार। मात्र हिंस्र जन्तुओको अपने शरका लक्ष्य बनाओ। सहमत हूँ।

सिद्धार्थ—मै सहमत नही हूँ, गुरुवर। हिंस्र-अहिंस्र प्राणवानोकी सज्ञा है, बाणहत सिंह और शरविद्ध मृगीमे मेरे लिए कोई अन्तर नही है। दोनो ही अपने मरणमे निस्पन्द है, अपनी पीडामे कातर।

[लोगोमे फुसफुसाहट, हलचल]

राजा—कठिन हो, कुमार।

पुरोधा—नि सन्देह कठिन।

सिद्धार्थ—मूलमे हिंस्र-अहिंस्रकी वेदना समान है, राजन, जैसे भस्मीभूत शमी और पलाशकी अग्निकी शीतलता समान है, पुरोधा! यह मेरा अन्तिम शस्त्र-व्यापार था। विरत होता हूँ शस्त्र-कर्मसे आजसे। आप सब साक्षी हो!

[राजाका चुपचाप चला जाना, फुसफुसाहट, हलचल, शान्ति।]

दृश्य २

[जामुनके पेड तले चिबुक हथेलीपर धरे सिद्धार्थ निस्पन्द बैठा है। पुष्करिणीमे प्रात कालीन मलयके स्पर्शसे हल्की लहरियाँ उठ रही हैं। जब-तब कमलोकी छायासे निकल हसोके जोडे जलकी सतहपर सहसा तैर जाते हैं, पर सिद्धार्थके चिन्तन-व्यापारमें कोई अन्तर नहीं पडता। शान्त नीरव वह बैठा है।]

सिद्धार्थ—[उठते हुए सूर्यकी किरणोके स्पर्शसे जागता-सा] कितना नीरव है निसर्ग! कितना विपुल है इस निसर्गका वैभव! कितनी प्रशस्त है, अरुण, तुम्हारी यह सचरण भूमि, यह फैला आकाश, पर इसके चँदोवे तले रहनेवाला मानव कितना अकिंचन है, कितना करुण! जीवधारीका सकट कितना दारुण है! बालपनका प्रसन्न हास तारुण्यके उल्लासमे, उसकी असीम कामनाओमे बदल जाता है, उल्लास प्रौढताके चिन्ताकुल गर्तमे खो जाता है। जरा आती है और कमनीय काया जर्जर हो जाती है, फिर वही एक दिन निर्जीव भी हो जाती है। क्या होता है फिर उस प्रसन्न हासका, उल्लासका, उस जर्जर कायाका भी?

[आमका फल टपक पडता है। टपकनेकी हल्की आवाज।]

सिद्धार्थ—यह टपक पड़ा आम ! जैसे जर्जर काया टपक पड़ती है ! आमका वह पका पीत गात ! जीवका पका-अधपका—तरुण—बाल जीवन धागेसे बँधा टँगा है, दुर्बल धागेसे, और हल्की बयार भी उसे झकझोरकर नष्ट कर देती है। [सूर्यकी ओर देखते हुए] तुम लोक-लोक फिरते हो, अपनी काया दाहते, दूसरोको आलोक अरुण गरमई बाँटते, भला ब्रह्माण्डके किसी और भागमे भी जीवको तुमने इतना कातर इतना बेचारा पाया है ? पर स्वय क्षितिजके परे-नीचेसे तुम उठते हो, सुकान्त—अरुण, आकाशकी मूर्धापर धीरे-धीरे चढ जाते हो, फिर निस्तेज हो चलते हो अपने अस्ताचलकी ओर, अपनी ही पराजयसे आरक्त ! क्या अन्तर है भला दीन प्राणियोमे और तेजोमय तापराशि तुममे ?

[सहसा पुष्करिणीमे कुछ हलचल होती है, कुमार नीचे देखता है, बड़ी मछली छोटीको मुँहमें दबाये उछल पड़ती है। कुमार हिल उठता है।]

सिद्धार्थ—वही ऊपरका ही प्रतिबिम्ब इस जलमे भी ! मात्स्यन्यायका दारुण व्यापार ! कौन प्राणियोकी रक्षा करेगा, इस सहारसे, इस मारक ह्राससे ?

[हसोके जोड़ोका जामुनकी डालीपर किलोल]

सिद्धार्थ—सदासे करते आये है मनीषी। पर क्या कर पाये वे खोज जीवन-व्याधिकी औषधिकी ? मै करूँगा। [शब्दोपर जोर देकर] मै ! अकिञ्चन हूँ, उन मेधावियोकी तुलनामे। पर करूँगा मै खोज उस उपायकी जो दुःखका मूल काट सके, प्राणीका दुःख मोच सके।

[क्रौंच-मिथुनके किलोल शब्द]

सिद्धार्थ—कितनी धूप है इस धरापर, निसर्गमे कितनी शान्ति है, प्राणीका प्राणीमे कितना मोह ! पर जितनी ही धूप है, उतनी

ही छाया, जितनी ही शान्ति है, उतना ही कोलाहल, जितना मोह, उतनी ही घृणा ! ऐसा क्यो ? क्यो किसीका आह्लाद किसीका विषाद बन जाता है, किसीके उल्लसित प्राणोको कोई क्यो सहसा हर लेता है ?

[क्रौंचका कातर-करुण आर्त स्वर ! सहसा आहत पक्षीका सिद्धार्थकी गोदमे गिरना। कुमार यकायक उछल पडता है।]

सिद्धार्थ—आह ! [घायल पखीकी फडफडाहट। सिद्धार्थ पक्षीके शरीरसे बाण निकालता हुआ उच्छ्वासके साथ—] मार डाला व्याधके बाणने ! [बाष्प गद्गदकण्ठ] क्या बिगाडा था भला इस निरीह पक्षीने वधिकका ? [सहसा पहले उसकी छायाका फिर देवदत्तका प्रवेश। सुपुष्ट वाम स्कन्धसे लटकता धनुष, पीठपर बाणोसे भरा तरकश, दाहिने करके बाणकी नोक घर्षित करती उँगलियाँ। वक्षका छोटा-सा पुष्पहार आखेटकी व्यस्ततासे धूमिल। कुमार घृणासे मुँह फेर लेता है।]

देवदत्त—क्रौच मेरा है, कुमार !

सिद्धार्थ—[घृणासे दृष्टि उठाता हुआ] लुब्धक ! किरात !

देवदत्त—[हँसकर] कुलपति विश्वामित्रके अनुसार ये शब्द सभ्य नही, कुमारके सर्वथा अयोग्य !

[कुमार फडफडाते पक्षीके लहूसने पख पुष्करिणीके जलमें धोता है। जलके छींटे उसके नेत्रोपर डालता है, कुछ उसकी चंचुमें।]

देवदत्त—[कुछ ऊँचे स्वरमें] कुमार, क्रौच मेरा है ! [सिद्धार्थ ललाटसे पसीनेकी नन्ही बूँदें पोछ लेता है।]

देवदत्त—[उच्चतर स्वरमें] क्रौच मेरा है, कुमार !

सिद्धार्थ—[फडकते होठोसे] मृत क्रौंच तेरा, जीवित मेरा।

[क्रौंचके रक्तसे रँगे अपने नाखून धोता है। एक उंगलीसे हंसका घाव हल्के दबाये हुए हैं।]

देवदत्त—[सिद्धार्थकी शान्त चेष्टासे जल-भुनकर उच्च स्वरसे] कुमार !

सिद्धार्थ—[सवेग दृष्टि फेरता है] बोल !

देवदत्त—[क्रोधसे काँपते स्वरसे] दे दो मेरा क्रौंच !

सिद्धार्थ—[अविकृत उपहासास्पद वाणीसे] यमसे माँग अपना क्रौंच, देवदत्त !

देवदत्त—ले लूँगा, कुमार, अपना क्रौंच ले लूँगा !

सिद्धार्थ—ले ले, यदि शक्ति है।

[कुमारका तनकर खडा होना, देवदत्तका सवेग आगे बढना। सहसा केलोकी बाढसे निकलकर रक्षकोका देवदत्तको पकड लेना।]

पहला रक्षक—सावधान, देवदत्त !

देवदत्त—छोड दो मुझे ! कौन हो तुम ?

रक्षक—राजाज्ञासे हम सदा कुमारकी अलक्षित रक्षा करते हैं।

देवदत्त—छोड दो मुझे, हट जाओ !

सिद्धार्थ—छोड दो न, तनिक देखूँ इसका वाहुवल। क्रौंच समझ रखा है इसने मुझे भी !

देवदत्त—हाँ, छोड दो मुझे, दिखा देता हूँ अभी क्रौंच किसका है !

दूसरा रक्षक—अब इसका निर्णय सथागारमे होगा, राजा करेंगे। चलो !

[सब सथागारकी ओर जाते हैं। देवदत्त रक्षकोसे घिरा, कुमार पक्षीको दोनो हाथोसे पकडे, छातीसे सटाये हुए। सभी चुप।]

दृश्य ३

[शाक्योका सथागार। राजा, उपराजा, पुरोधा आदि बैठे हैं। सथागारमे इस समय न्यायालयके इन अधिकारियोंके अतिरिक्त केवल वादी-प्रतिवादी हैं जिनके मुकदमे सुने जा रहे हैं। प्रधान रक्षकने देवदत्त और सिद्धार्थके साथ आकर स्थिति निवेदन की। राजाने दोनोको आत्मनिवेदन करनेको कहा।]

देवदत्त—राजन्, सिद्धार्थ गौतमने मेरे आखेटका लक्ष्य वलपूर्वक अपहृत कर लिया हैं।

राजा—सो कैसे ? स्पष्ट विस्तारपूर्वक कहो।

देवदत्त—देव, नित्यकी भाँति आज भी शाक्य-नियमोंके अनुसार आखेट-व्यायामके लिए वनान्तकी ओर चला गया था। देर तक दौड-भाग करनेपर भी जब कोई शिकार न मिला तब मन मारे लौट रहा था कि नगरके पूर्वद्वारकी पुष्करिणीके तीर जामुनके वृक्ष-पर क्रौंच मिथुनको देखा। बाण जो सधानकर मारा तो वह क्रौंच-नरके जा लगा और वह तत्काल आहत हो नीचे गिरा। नीचे सिद्धार्थ गौतम सदाकी भाँति आज भी जामुनकी छायामे बैठा था। क्रौंच उसकी गोदमें जा गिरा। जब मैंने पहुँचकर अपना शिकार माँगा तब उसने उसे देनेसे इन्कार किया और द्वन्द्व युद्धके लिए तत्पर हो गया। मुझे मेरा शिकार मिलना चाहिए।

राजा—रक्षक, तुम क्या वही थे ?

रक्षक—देव, मै वही था। मेरे साथ वालाहक और वधिर भी थे।

राजा—उन्हे भी उपस्थित करो।

[प्रधान रक्षकका वालाहक और वधिरके साथ प्रवेश। राजाज्ञा उनके सामने देवदत्त अपना वक्तव्य दुहराता है।]

राजा—[प्रधान रक्षकसे] देवदत्ताका वक्तव्य क्या सच है ?

प्रधान रक्षक—देव, सच है, सिवा इसके कि सिद्धार्थ गौतमपर आक्रमण-का उपक्रम पहले देवदत्तने ही किया।

[राजाके पूछनेपर अन्य रक्षक भी इसकी पुष्टि करते है।]

राजा—सिद्धार्थ गौतमपर आक्रमणका उपक्रम जब पहले तुमने किया, देवदत्त, तब आवेदनका अर्थ क्या रहा ?

देवदत्त—आक्रमण हुआ नही, देव ! फिर आखेटके लक्ष्यका न्याय तो होना ही है।

राजा—सो तो होगा ही, पर व्यवहारका तिरस्कार तो उचित नही।

देवदत्त—[सिर झुका लेता है, फिर अपने-आप धीरे-धीरे कहता है—] पितृव्य द्वारा न्याय कहाँ तक सम्भव है, विशेषकर जब प्रतिवादी पुत्र हो !

राजा—सिद्धार्थ गौतम, देवदत्तका आवेदन कहाँ तक सच है ?

सिद्धार्थ—प्राय समूचा ही सच है, राजन्।

राजा—समूचा ही सच है ?

सिद्धार्थ—प्राय समूचा ही, हाँ, देव।

राजा—फिर तुम्हारा कुछ प्रतिवाद नही ?

सिद्धार्थ—है, राजन्, प्रतिवाद है।

राजा—बोलो, क्या है ?

सिद्धार्थ—देवदत्तने क्रौंचको शरविद्ध किया। वह धरतीपर नही गिरा, मेरी गोदमे गिरा। रक्त और अशौचसे अपना गात अपवित्र करनेका आवेदन नही करता, राजन्, पर प्रश्न एक निश्चय निवेदन करूँगा—क्रौंच मृत नही जीवित गिरा, मरणासन्न ! मैने उसे जलादिके उपचारसे सम्हाला। क्रौंच किसका है ?

राजा—उसे मारा किसने ?

देवदत्त—मैने।

सिद्धार्थ—जिलाया मैंने। और मैं पूछता हूँ—क्रौंच मारनेवालेका या जिलानेवालेका ?

राजा—ऐं!

[राजा चकित हो जाता है, उत्तर नहीं दे पाता, अपने चारों ओर न्यायके पण्डितोंकी ओर लाचार देखता है। धर्मसूत्रोंमें उसका विधान नहीं। सब चुप हैं।]

राजा—[पण्डितोंसे] क्रौंच मारनेवालेका या जिलानेवालेका ? [पण्डित चुप हैं]

राजा—देवदत्त, परम्पराके व्यवहारमें क्रौंच तुम्हारा है, पर सिद्धार्थ गौतमने जो प्रश्न उठाया है वह भी कुछ कम महत्त्वका नहीं। मैं लज्जित हूँ, कुछ निर्णय नहीं दे सकता।

[देवदत्त भुनभुनाता हुआ चला जाता है, सिद्धार्थ छातीसे क्रौंच-को चिपकाये सभागारसे बाहर हो जाता है। राजा धीरे-धीरे दुहराता है—'क्रौंच मारनेवालेका या जिलानेवालेका ?' धीरे-धीरे सभी पण्डितोंके मुँहसे उसी प्रश्नकी प्रतिध्वनि उठती है।]

[पटाक्षेप]

जोहान वोल्फ़गांग गेटे

वाचक—बाईस वर्षका गेटे। जिस्म फौलादी। साँचेमे ढला हुआ। ऊँचा कद, अत्यन्त सुन्दर। मधुर रोमानी कवि। उसके लिरिकोकी प्रशसा लेसिगके-से कठिन आलोचको तकने की है। भावुकता और रोमासकी अमित सम्पदा उसकी कवितामे है। उस कविताने कुमारियो और विवाहिताओके हियेमे टीस उठा दी है। पर स्वय वह किसी एकके प्रति चिरकालिक स्नेह नही रख पाता। कानूनके अध्ययनके लिए वह स्त्रासबुर्ग आया है। फ्राकफुर्त और लाइपजिग-मे तरुणियोके अनुरागपर वह शासन कर चुका है। वही अब स्त्रासबुर्गमे है। स्त्रासबुर्ग प्रकृतिका रनिवास है, सम्मोहक सकेत-गृह। पहाडोकी वर्फ ढुलक चुकी है। वसन्त यौवनपर है, पराग बरस रहा है। चारो ओरकी पहाडियाँ फूलोसे लदी है। वही वासन्ती लतिकाओके बीच, गेटे और मिनी—

गेटे—कितना मधुर रहा होगा वह कवि, मिनी, सोचो जरा।

मिनी—तुम जितना शायद नही, जोहान।

गेटे—नही, मिनी। ये पूरबके कवि, वैसे भी भावराशिके स्रष्टा है पर रस और ध्वनि तो जैसे उनकी अपनी है। और जब प्रकृति भी उनसे सहकार करती है तब तो जैसे उनकी लेखनीमे जादू बस जाता है। फिर इस कालिदासकी तो कही समता ही नही।

मिनी—पर तुम तो कहते थे न कि पूरबके कवि भावबोझिल है, अध्यात्म-प्रवीण ?

गेटे—नही, पर भाव और आत्मबोध जीवनके साथ वे अजब रीतिसे पिरो देते है। फिर अध्यात्मसे अलग भी उनका असीम काव्य है जो निरे जीवनसे सम्बन्ध रखता है। उद्दाम जीवनसे, उसकी उस आँधीसे जिससे जीवन स्वय जडतक हिल जाता है। और उसी

आंधीको उनका सुकुमार काव्यतन्तु, प्रणयका पतला धागा, बाँधकर बेबस कर देता है। अनुरागका वह कवि रति-विरतिके मैदानमे जैसे रतन बिखेर देता है, सारी प्रतिभाएँ फिर उसमे अपना इष्ट, अपना भाग, खोज लेती है।

मिनी—जोहान, मुझे अपने स्वरमे वञ्चित न करो, उस मधुर स्वरसे, जो मेरे सूनेका सर्वस्व है। सुनाओ अपनी वह कल्पना जिसकी सीमाएँ तुम्हारे शब्द ही छू सकते है।

गेटे—अच्छा सुनो, मिनी, कविकी वाणी सुनो। अर्थको न सोचो। तुमने स्वर मागा है, सुनो, और जानो कि इससे मधुर इस धरापर और कुछ नही—

सरसिजमनुविद्ध शैवलेनापि रम्य
मलिनमपि हिमाशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।
इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी
किमिव हि मधुराणा मण्डन नाकृतीनाम्॥

मिनी—यही शकुन्तला है, गेटे?

गेटे—यही, मिनी। शकुन्तला यही है। और मांगो अपने कविसे यह छवि। दे सकेगा भला? उसकी सारी काव्यसम्पदा इसके सामने तुच्छ है।

मिनी—सच जोहान, शैवलमे उलझा कमल, धब्बेसे मलिन चाँद, वल्कलमे लिपटी शकुन्तला—तीनो अभिराम है, अपने दोषोसे ही सुन्दरतर।

[नौकरका प्रवेश]

नौकर—हर्डरकी सेक्रेटरी पधार रही है।

गेटे—बिठाओ। कहो मैं तैयार हूँ, अभी चलूँगा। [मिनीसे] मिनी, जानती हो, आज लेसिंगसे मिलना है। इसीसे हर्डरने सेक्रेटरी भेजा है। जाता हूँ, क्षमा। अल्विदा!

मिनी—जानती हूँ, प्रिय ! नही रोकूँगी, जाओ । अल्विदा !

[प्रस्थान]

वाचक—युग बुद्धिवादी है। जीवनके हर पहलूको तर्ककी कसौटीपर कसा जा रहा है और उस तर्कका मध्य बिन्दु है लेसिंग। लेसिग ख्यातिकी चोटीपर है।

[हर्डर नये युगका प्रवर्तक है, 'स्टूर्म उण्ड ड्राग'—तूफ़ान और ताकतके युगका। उसके प्रधान सहायक गेटे और शिलर होने वाले है, तरुण गेटे, तरुण शिलर। हर्डर बुद्धिवादको जीवनपर अत्याचार मानता है। रोमैंटिक परम्पराका वह पिता है। गेटेसे केवल पाँच वर्ष बडा, पर उसका सिद्धान्त-गुरु। वही लताओंकी आडमे होटलके बरामदे लेसिंग और हर्डर बैठे है। बहस छिडी है। बीच-बीचमे दोनो हलकी हालाकी चुस्कियाँ ले लेते हैं ! गेटेका इन्तजार है।]

हर्डर—ना, लेसिग, साहित्य तत्त्वबोध नही, शिराओका कंपन है, मधुर-मादक भावोका ऊहापोह, आमूल हिला देनेवाली स्वप्निल व्यजना-का मूर्तन, रति-विरतिका गुम्फन।

[वेयररका प्रवेश]

वेयरर—जोहान वुल्फगाग गेटे।

[गेटेका प्रवेश; लेसिग और हर्डरका स्वागतके लिए उठना]

हर्डर—लेसिग [एक साथ]—स्वागत ! स्वागत !

गेटे—अनुगृहीत हुआ।

हर्डर—लेसिग, जर्मनीकी अभिनव भारतीके अनुपम सर्जक तरुण गेटेको तुम्हारे समीप उपस्थित करके अभितृप्त होता हूँ। 'स्टूर्म उड ड्राग' की तुम मुझे आद्याशक्ति कहते हो, कहो अगर चाहो, पर उसका वास्तविक केन्द्र आज तुम्हारे सामने है यह गेटे।

[हर्डरके स्वरमें उत्साहसूचक कम्पन]

लेसिग—गेटे, मानता हूँ तुम्हारी काव्यशक्ति। जर्मनीका साहित्य तुमसे भरेपुरेगा इसमे सदेह नही। स्वागत!

गेटे—अनुगृहीत हुआ। महामहिम लेसिगकी सत्कामना मेरे मार्गको नि शूल करेगी, धन्यवाद। पर हर्डरका मेरे प्रति पक्षपात आपसे सभवत छिपा नही। [फिर हर्डरसे] और हर्डर, आभार, धन्यवाद।

लेसिग—जानता हूँ, गेटे, हर्डरका तुम्हारे प्रति आकर्षण। पर यह भी जानता हूँ कि वह आकर्षण अकारण नही है। फिर तुम उस विप्लवके केंद्र होने जा रहे हो, हर्डर जिसका आदि बिन्दु है। स्वय मै यद्यपि उस दृष्टिकोणको स्वीकार न कर सका, पर, तुम्हारी कलमका जादू स्वीकार करता हूँ और वह हर्डरकी सिफारिशसे नही। [वेयररसे] वेयरर, ग्लास। [गेटेसे] गेटे, सच, तुम अपनी जमीनपर खडे हो?

गेटे—सम्मानित हुआ, लेसिग। पर शायद मैने आकर भाव-शृखला तोड दी।

लेसिग—नही, नही गेटे। तुम्हारे ही लिए तो आज हम बैठे है। और शृखला जो टूटी तो वह जुड भी जायगी। क्यो हर्डर?

..र—निश्चय। और मेरा विश्वास है, हमारा तरुण कवि हमारे विचारोसे ऊबेगा नही।

—नही हर्डर।

तो तुम तर्ककी नित्य सत्ता स्वीकार नही करके, तुम जो विज्ञान-का जादू देख रहे हो, स्वय उसके प्रमुख हिमायतियोमेसे हो।

.र—सही, लेसिग, मै विज्ञानकी सत्ता स्वीकार करता हूँ। उसके प्रसारके हिमायतियोमे भी हूँ। पर मै बुद्धिका अविकसित शाश्वत रूढि-सत्ताको नही मानता।

लेसिग—फिर क्या मानते हो?

हर्डर—मानता हूँ कि बुद्धि जीवनसे पृथक् नही है, उसकी व्यवस्थापिका है।

लैसिंग—यानी कि तुम उसे जीवनकी व्यवस्थापिका मानते हो? फिर विरोध कहाँ है? बुद्धि यदि व्यवस्थापिका है, जीवनकी सचालिका है तो क्या उमकी रग-रगमे समाहित नही?

हर्डर—वस, यही तो विरोध आता है। बुद्धि व्यवस्थाकी परिचायक है, उसकी सर्जक, स्वय व्यवस्था। पर जीवनसे सम्पर्कमे व्यवस्था उसकी करवटका एक वल मात्र है। उसके शरीरका रूप मात्र। रूपसे जीवनका वोध हो सकता है पर रूप जीवन नही है, उमका सवोधक आभास मात्र है।

गेटे—मैं दखल दे सकता हूँ?

लेसिंग—[वोलता-वोलता] ओ वोलो, वोलो।

गेटे—क्षमा करेंगे, वात कट गई, वात पूरी करले।

लेसिंग—नही, नही, वोलो तुम। मेरी वात लम्वी है, फिर हो लेगी। पहले तुम कहो अपनी वात।

गेटे—मैं हर्डरसे पूछ रहा था कि फिर बुद्धि जीवनमे कहाँ आती है—क्या जीवनको सम्हालनेमे नही?

हर्डर—ठीक, बुद्धि जीवनकी सम्हालमे ही आती है। उसे सम्हाल रखने, व्यवस्थित रखनेमे ही बुद्धिकी सार्थकता है। पर व्यवस्था स्वय, जैसा कह चुका हूँ, जीवन नही।

गेटे—जर्मनीके धार्मिक युद्धोमे क्या जीवन नही रहा है? जीवनने ही तो जीवनका अन्त किया है?

हर्डर—सही, धार्मिक युद्धोकी वर्वरता अनुपमेय है पर जीवनकी उपासनासे उनका क्या सवन्ध?

लेसिंग—यह कि तर्क सम्मत जीवनका अभाव ही उसका कारण है। बुद्धिवादी अपने तक, प्रोटेस्टेट या रोमन कैथोलिक, विश्वास

करता है और स्वय वह अपना दृष्टिकोण स्वीकार करता है, विपक्षीको भी अपनी बुद्धि द्वारा अनुमोदित दृष्टिकोण कायम रखनेका विरोध नही करता। इस बुद्धि-व्यवस्यामे धार्मिक सहिष्णुता आती है, वरना, देखो, आल्सेम और पोलैड तकके उजडे गाँव और विध्वस्त नगर।

हर्डर—मै कब कहता हूँ कि तर्क-सम्मत जीवनमे मेरा विरोध है? मै सहिष्णुताके युग और उसकी अमूल्य देन शान्ति और स्वतन्त्रताको स्वीकार करता हूँ। इससे विशेषकर सतुष्ट हूँ कि उसकी स्थापना मे लेसिंगका सक्रिय योग रहा है।

लेसिंग—क्या उन्हें स्पष्ट करोगे?

हर्डर—निश्चय। लेसिंगका बुद्धिवाद विश्वको स्थिर यन्त्रके रूपमे देखता है जिसकी व्यवस्था तर्क-सम्मत विधानोसे होती है। मै विश्वको जीवित चचल शरीर परिवर्तनशील शरीरके रूपमे पाता हूँ जो निरन्तर बढता और नष्ट होता रहता है। हमारे पैरो तलेकी यह धरती स्वय सतत गतिमती है, क्षण-क्षण कण-कण बदलती है। इसी प्रकार जो कुछ इस पृथ्वीसे प्रसूत होनेवाला है—जलवायुसे लेकर भाषा, रस्मोरिवाज, मजहब तक—वह सभी पृथ्वीकी ही भाँति बराबर बदलता जा रहा है। नित्य कुछ भी नही, नित्य बस एक चीज़ है, जीवन, प्रवहशील जीवन, निरन्तर बदलता, पर अपनी अटूट शृखलामे सदा नित्य, उद्दाम। बुद्धिवादके कमज़ोर धागोमे उसे बाँधनेका प्रयत्न न करो, लेसिंग।

—नही, हर्डर, नही करूँगा। अच्छा चला मै, समय हो गया। युनिवर्सिटीकी गोष्ठी अब आरम्भ होनेवाली है। आज हमारी बात बस यही तक। और गेटे, मुझे जाना ही पड रहा है, खेद है। तुमसे मिलकर बडी प्रसन्नता हुई। हर्डर भाग्यवान् है जिसे तुम-सा समर्थ सहायक मिला। 'स्टूर्म उड ड्राग' का भविष्य मेरे

बावजूद आलोकमय है, आलोकमय हो । क्षमा करना, गेटे, क्षमा

हर्डर [उठते हुए ।]

गेटे—ठीक है, ठीक है ।

हर्डर—मै भी लेसिगकी सिफारिश करता हूँ, गेटे । युनिवर्सिटीकी गोष्ठी इनकी राह देख रही होगी ।

गेटे—ठीक है, ठीक है । निश्चय पधारे । हम फिर आयेंगे । दर्शन कर अनुगृहीत हुआ ।

लेसिग—[हैट और छड़ी उठाते हुए] और देखना, हर्डर, अभी जाओ नही । ग्लास खाली करके जाना । जल्दी क्या है ?

हर्डर—अच्छा, अच्छा । धन्यवाद ।

[दोनो लेसिगसे हाथ मिलाते है । लेसिग जाता है]

लेसिग—[जाते-जाते दूरसे आती आवाज] हर्डर मुबारक तुम्हे उद्दाम जीवन ! गेटे, उन्मद जीवन मुबारक !

[प्रस्थान]

हर्डर, गेटे—धन्यवाद ! धन्यवाद !

हर्डर—[धीरे-धीरे बैठते हुए] गेटे, यही लेसिग है । युग-पुरुष, इस युगका प्रवर्त्तक । धन्य है हम, उसके समकालीन !

गेटे—[बैठकर] सही । इस यूरोपीय युगका उन्नायक लेसिग ही है । पर एक बात बताओ, हर्डर ! लेसिग कुछ अप्रतिभ नही था ?

हर्डर—ऐसी गलती न करना, गेटे । मुझमे दम कहाँ जो उसे अप्रतिभ कर सकूँ । सम्भवत तुम नवागन्तुकके कारण उसने अपना गत्य-वरोध जान-बूझकर किया । वरना उसका वाग्विलास, उसका तर्क-वितर्क ! कहाँ लेसिग, कहाँ मैं !

गेटे—तुम दोनो महान् हो, हर्डर, तुम भी, लेसिग भी । मैं तो दोनोका मुँह ताकता रह जाता हूँ ।

हर्डर—सुनो, गेटे, लेसिंगका तर्क बड़ा, मेरा शायद, जीवनका उल्लास बड़ा है। पर तुम्हारे पास हृदय है, दोनोंसे बड़ा। हम दोनों खो जायेंगे, तुम युगोंकी जिह्वापर विराजोगे।

गेटे—नहीं, मेरे अजेय गुरु। दीक्षा दो मुझे।

हर्डर—गेटे, ढोंग न करो। पर यदि मुझे तुम्हें किसी ओर आकृष्ट करना है तो बस, इस ओर—राष्ट्रोंके लोकगीतोंका सौन्दर्य चेतो। प्रकृतिकी ओर लौटो, मौलिकताको पेबन्द न लगाओ, प्रतिभापर कोई प्रतिबन्ध न मानो, क्योंकि सर्जकका व्यक्तित्व अपना कानून आप है। स्वच्छन्द गाओ, तुम्हारे लिरिकोंमे उद्दाम जीवन लहरें मारता है, उल्लास सस्वर है। भला कौन भूल सकता है तुम्हारे 'हाइदेन्रोज़लाइन' की बेक़ाबू कर देनेवाली बेबस पुकार।

गेटे—आभार, आभार हर्डर! कितने उदार हो!

हर्डर—और देखो, शेक्सपियर, होमर, ओसियन, गोल्डस्मिथको न भूलना, याद रखो—शेक्सपियर, होमर, ओसियन, गोल्डस्मिथ।

गेटे—[जैसे मुग्ध दुहराता हो] शेक्सपियर, होमर, ओसियन, गोल्डस्मिथ।

[दोनों साथ-साथ उठते हैं, धीरे-धीरे होटलसे बाहर निकल जाते हैं। हाथ मिलाकर विदा होते हैं।]

हर्डर—विदा, गेटे। फिर मिलेंगे।

गेटे—विदा! फिर मिलेंगे।

वाचक—डैन्यूबका एक कोण। वासन्ती प्रकृतिका अभिनव शृङ्गार। छिटकी चाँदनी, तैरता चाँद। बरसते मकरन्दकी सर्वत्र उठती मादक सुरभि। स्त्रासबुर्गके पासका गाँव, ड्रुसेनहाइम और उसीके बाहर नदीके इस कोणमें फूलों लदे निकुञ्जके बाहर मख़मली घासपर दोनों, फ्रेड्रिका और गेटे।

[हल्के संगीतका स्वर]

फ्रेड्रिका—आओ, वसन्तके गायक, सुना दो अपना भुवन-मोहन राग।

गेटे—फ्रेड्रिके, मेरी एकान्त सुरभि, बस बोलती जाओ। मधु घोलती चलो। तुम्हारे आलापका सम्मोहन मानव कविके परे है। उसकी रागपरिधिके परे।

फ्रेड्रिका—देखो, जोहान, रोम-रोम खुल पड़ा है, उसे निराश न करो, हृत्कमल आमूल खुल गया है, उसे सम्पुट न होने दो।

गेटे—अच्छा, रानी। क्या सुनोगी?

फ्रेड्रिका—वही, पिछली कविता, जिसे कहते हो, मुझपर लिखा है, जिसे हर्डरने सराहा है—'याचना'।

गेटे—अच्छा सुनो। [पहले हल्की गुनगुनाहट, फिर स्पष्ट स्वर]

मैं युग-युगका अनुराग लिये आया हूँ,
मधु ऋतुका अखिल पराग लिये आया हूँ,
तुम अपना सचित यौवन आज लुटा दो,
मैं मूक विरहकी आग लिये आया हूँ।
मै युग-युग० ॥

वह कान शरासन तान चला मुसकाया,
धरतीके तनपर यह अम्बरकी छाया,
उन आमोंमे वह मदिर कोकिला कूकी,
मैं मधुवनसे मधुराग लिये आया हूँ।
मैं युग-युग० ॥

खोलो, मानिनि, अपने अरुणाधर खोलो,
इन रागवधिर कानोमे तुम रस घोलो,
फिर कण-कणमे उन्माद सजग हो आये,
मैं इस प्रणयका राग लिये आया हूँ।
मैं युग-युग० ॥

तुम वीचि-विचुम्बित तीर खडी गुजारो,
अपने श्यामल नयनोका सिंधु उघारो,
फिर मुक्तकण्ठसे भाव-मुरलिका टेरो,
मै अरमानोका बाग लिये आया हूँ।
मै युग-युगका अनुराग लिये आया हूँ॥

[गूँजती लौटती-सी आवाज सूनेपनको भरती-सी]

वाचक—दोनो चुप है। सुननेवाला भी, सुनाने वाला भी। फ्रेड्रिका गेटेकी ओर देख रही है। गेटे आकाशकी ओर। गेटे जब फ्रेड्रिकाकी ओर देखता है, आँखे चार होती है। पर फ्रेड्रिका चुप है। कवि मुसकराता है पर प्रेयसी निरुत्तर आसमान देखने लगती है।

गेटे—फ्रेडा, चुप क्यो हो, प्राण ?

[कोई उत्तर नहीं]

गेटे—रानी !

फ्रेड्रिका—[उच्छ्वास छोड़ती हुई] जोहान, तुम मानव नही हो।

[आवाज भर्रायी हुई है, कुछ भारी-भारी]

गेटे—फिर कौन हूँ, फ्रेडा ?

फ्रेड्रिका—उन्हीमेसे कोई जिनके नाम लिया करते हो—होमर, ओसियन, उनके देवता, स्वर्गके गायक, शायद शेक्सपियरकी कल्पनाके कोई अभिराम नटवर।

गेटे—[हल्का हँसता हुआ] क्या ?

फ्रेड्रिका—नही, होमर और ओसियनका संसार सूना है कवि, वर्जिल-होरेसका भी, शेक्सपियरका भी। नही पा रही हूँ वह नाम, प्रियवर, जिससे संबोधन करूँ, जिसमे तुम्हारे रागका सारा उन्माद समा जाये।

गेटे—कहाँ विचर रही हो, रानी, किधर भटक पडी हो ?

फ्रेड्रिका—सुनो, गेटे ! सुनो, भला कौन है वह भारतीय कवि-नाट्यकार जिसकी सुकुमार छवि वह शकुन्तला है ?

गेटे—कालिदास, कालिदास !

फ्रेड्रिका—कालिदास, और उसका वह नायक ?

गेटे—दुष्यन्त।

फ्रेड्रिका—आह ! बस-बस ! दुष्यन्त। तुम दुष्यन्त हो, मेरे अभिराम गायक। पर अरे रे रे !

[बेहोश हो जाती है।]

गेटे—[उद्विग्न होकर] क्या है, फ्रेड्रिका ? क्यो क्यो ? यह क्या ? अरे क्या हो गया ? क्या बात है प्राण ?

फ्रेड्रिका—कुछ नही, कुछ नही, मेरे राजा। क्षणभरको उस मायावीकी याद आ गई थी। कहाँ हूँ, जोहान ?

गेटे—यहाँ मेरे अकमे, सुमुखि। उस मायावी दुष्यन्तसे दूर। द्रुसेनहाइम-की इस मकरदलदी उपत्यकामे। इस वासन्ती उपवनमे हम तुम दोनो अकेले।

फ्रेड्रिका—और मेरे प्रिय, तुम उस मायावीका-सा आचरण तो न करोगे ?

गेटे—दुर पगली ! मै तुम्हारा एकान्त अनुचर सदा तुम्हारा रहूँगा। सदा इसी आश्रमकी उपत्यकामे।

फ्रेड्रिका—नही, जोहान, उस स्थलकी याद फिर न दिलाओ। रोगटे खडे हो जाते है। आश्रमकी बात याद आते डर हो आता है।

गेटे—डरो मत, रानी। घबडाओ नही। मै सर्वथा तुम्हारा हूँ, सदा। चलो, घर चले।

फ्रेड्रिका—चलो। पर मन जाने कैसा हो गया। भला होता जो उस नाटककी याद न आयी होती। कविता सुनकर ही क्यो न चुप

रह गयी। क्या कुछ गुनने लगी। और वह मायावी याद आ गया।

गेटे—अच्छा सुनो, मन ठीक हो जायगा।

[गुनगुनाना। फिर स्पष्ट गायन, बाजेका हल्का स्वर]

गगन-पथ पर चाँद चढता जा रहा है,
भाव अन्तरमे उमडता आ रहा है,
मौन मनसे राग कढता आ रहा है,
प्रणयका उन्माद बढता जा रहा है।
गगन-पथ पर०।

नील अम्बर कानमे कुछ गुनगुनाता,
मौज मे दक्खिन पवन अभिराम गाता,
एक पंछी रात सूने मौन सन्नन्
नीडको बेचैन उड़ता जा रहा है।
गगन-पथ पर०।

नीड मेरा भी, मगर रीता, अकेला,
मै बसेराहीन राही क्लान्त तन-मन,
भाग अपना मांगता हूं आतिथेयी,
और बरबस अश्रु झरता जा रहा है।
गगन-पथ पर०।

पर अरे यह खिन्न मन कम्पित कलेवर,
तुम जरा अपने सम्हालो कोप-तेवर,
और अपना भ्रशरासन, देखता हूं,
तीर तरकशसे कढा जो आ रहा है।
गगन-पथ पर०।

पर भला यह रूप क्या मृगप्यास होगा?
या किसीके प्यारका उपहास होगा?

मौन तोडो आज बोलो शीघ्र वरना
यातनाका मान बढता जा रहा है।
गगन-पथ पर० ।

[दूर हटती इन्हीं पक्तियोको दुहराती आवाज]

वाचक—गेटे वेज़लरमे है। अपने जीवनका नितान्त भावुक काल वहाँ बिता रहा है। समारको वह यथावत् नही ले पाता। उसे वह अपनी मन स्थितिके अनुकूल, मौसिमके अनुकूल, कभी तो नरक-सा भयानक देखता है कभी स्वर्ग-सा काम्य। कोई पेशा उसे पसन्द नही, कोई चीज नही जो उसे बाँध सके। प्रोमेथियस लिखता अनियत्रित प्रोमेथियस बन जाता है। उसे आजादी चाहिए, उन्माद। वनन्तमे वह आनन्दके आँसू बहाता है, होमरकी पक्तियाँ ही उसे आश्वस्त कर पाती है। बाल-नृत्यमे वह लोती बूथसे मिलता है। फिर तो उसकी भावुकता सारे प्रतिबन्ध तोड बह चलती है। उसकी प्रेयसी दूसरेकी वाग्दत्ता है पर वह उस बातकी परवाह नही करता। वेज़लरमे जब गर्मियाँ आती है काम अपना शरासन कानो तक खीच लेता है। जन-जन मगन होता है, मन-मन विभोर। नदियोका कलकल बरबस अपनी ओर खीचता है। फूलोके सौरभसे लदा पवन अनजाने पैठ मनको गुदगुदाता है। ऐसी ही गर्मियोमे सफेदोकी डोलती छायामे वही सुकुमार लोती, वह मदिर गेटे—

लोती—मेरे सलोने जादूगर, तूने जो अपनी छडी घुमा दी है, अन्तरङ्ग बेबस हो गया है। अब सम्हाल।

गेटे—मै क्या सम्हालूँ लोती? मेरा तो रोम-रोम स्वय उस पीडाका शिकार है जिसे न झेलते बनता है, न छोडते। ऐसा नही कि नारी मैने

जानी न हो लोती, पर अबकी जैसे उसका पागल कर देनेवाला प्यार नस-नसमें पैठ गया है, भिन रहा है।

लोती—[हँसकर] पहचानो, मेरे मधुर मित्र! सचमुच क्या उस अन्तरमें मैं ही हूँ या कोई और है? तुम जैसे मधुपका क्या? आज यहाँ मँडराये, कल वहाँ गुजार किया और अभिराम कुसुम एकके बाद एक तुम्हारे तीक्ष्ण रस-शोषकोसे बिधते गये। तुम्हारा भाग्यशाली अक खाली कब रहा है?

गेटे—भ्रम है तुम्हारा, रानी। जीवन एक मात्र तुम्हारे आमोदसे उन्मद है, मात्र तुम्हारी व्याधिसे पीडित, तुम्हारे प्यारसे आलोडित। अन्त-रङ्गके पीडास्थलपर हाथ रखता हूँ, उसे पकड नही पाता। नही जान पाता तुम्हारा वह छलिया रूप कहाँ घर किये बैठा है, सदा मेरी पकडसे दूर, गहरे, और गहरे, पहुँचसे दूर गहरे।

लोती—रात कठिन होती है, वोल्फगाग, आजकल सुरमयी तारो भरी रात, खिलखिलाती व्यग करती। खिडकीसे देखती करवटे बदलती हूँ। अन्तरके मेरे विचारोकी भाँति चमकता तारा उठता है, पीछे लम्बी सुनहरी लीक छोडता दौड पडता है, टकराकर टूट जाता है, हजार-हजार टूक, जैसे मेरी हजार-हजार कणोमे बिखरी छितराई साधें। काँप जाती हूँ डरसे, मेरे मित्र। नही जान पाती रहस्य उसका क्या है। कोई जैसे मेरे ही हियेसे मेरा सरवस लिये जाता है दूर, बहुत दूर, रेगती डैन्यूबके जगलोकी ओर, आलसकी भेदभरी काली मालाओके परे।

[illegible]—और मैं जैसे सुन्न। सूनी अँधियारीमे कुछ टटोलता पर पाता नही हूँ। दूर गाते हुए स्वरकी चोट जैसे नसोमे समा जाती है। भूला सपना जैसे जी उठता है। लगता है किसीने एक साथ साजपर जोरसे हाथ मार दिया और दिलका हर तार झन्ना उठा, देर तक झन्नाता रहा।

लोती—कितना दूर है वह ऊपरका ससार, गेटे, और लोग उधर जानेका कितना प्रयास करते है । कितने गिरजे, कितने सम्प्रदाय उस ओर पहुँचनेका प्रयत्न नही कर रहे ? पर सच कितना सूना है वह जगत् । और अपना यह ससार कितना भरा है, चाहे पीडाओसे ही क्यो न भरा हो, चाहे सिसकती यादोसे ही क्यो न हो, टूटी साधोंसे ही क्यो न हो !

गेटे—लोती, कितनी कमनीय हो तुम ? तुम्हारे ये मधुर भाव कितने कोमल है, कितने विकलकारी । और इससे तुम अपनी अभिनव कान्तिसे भी कितनी अधिक आकर्षक हो जाती हो, तुम शायद नही जानती । शायद यह भी नही कि तुम्हारी इन मदिर जिज्ञासाओमे, इनकी भोली प्रतीतोमे उस दक्खिनी हवाका जादू होता है जो जब तब प्रभातकी अँगडाइयो-सा जगलोमे भटक पडता है ।

लोती—तुम्हारा यह ललाट, कवि, सदा मुझे गोथिक शील्डकी याद दिलाता है, फिर मध्यकालीन वीरोकी, और फिर आर्थरसे एकिलिस तककी एक परम्परा-सी वन जाती है ।

गेटे—पर क्या पेरिसकी याद नही आती ?

लोती—नही, मेरे पेरिस, पेरिसकी नही । क्योकि मुझे राही प्रोमेथियस प्यारा है, प्रोमेथियस सीमाएँ न माननेवाला, सदा अतृप्त प्यासा, सतत अनुरागका दिव्य वाहक, यद्यपि अति मानव फ्राकेन्स्टाइन नही ।

गेटे—तुम कितनी मधुर हो, कितनी मादक, कितनी अभिनव कान्तिमती ! तुम्हारी आँखें रजनीके रहस्योसे भरी है, पलक वोझिल है । मदिर, पर कितनी निष्ठुर हो तुम, मेरी आफ्रोदीती, मेरी क्रूर वीनस ! [पास आकर घुटने टेक देता है] जीवनको

तिरस्कृत न करो, भुवनगायिके, रग भर दो इसमें और हवाएँ क्षितिजपर उसे ले उडेगी, उस अभिरजित सुरभिको।

लोती—बहके, बहक चले तुम, मेरे कोमल गायक। मेरे प्रोमेथियम, अब तुम्हारे असयत विलासके पख खुल पडे। चेतो, नही फ्रान्केन्सटाइन की छाया पड चली है। शीघ्र, वरना उसकी महाकायिक जिह्वा हम दोनोको चाट जायेगी। और अब चलो, देर हुई। [चलनेको होती है]

[गेटे जैसे निद्रासे जाग उठता है]

गेटे—देखो, अभी नही, लोती। अभी न जाओ। अन्धेके पट जैसे खुल पडे है। पल्लव-पल्लव रजनीके झरते आसवकण, मुक्ताभ हिमकण लेनेको पुलक उठा है। जाओ नही, विश्वास रखो, प्रोमेथियम फ्रान्केन्सटाइन न होगा, न होगा फ्रान्केन्सटाइन, मानो।

[दूर हटती आवाज]

लोती—फिर-फिर, मेरे असयत प्रियतम, फिर मिलेगे। जब तक बुद्धिरूपी विकल वातास कामजलदको क्षितिज पार बहा चुका होगा। अल्विदा, जोहान! अल्विदा प्रिय! और अगली राते, अगले दिन मुबारक!

वाचक—लोतीको गेटे अब भी प्रिय है पर लोती जानती है वह रसप्रिय भ्रमर है, ससारी जीव नही। स्वय उसे अल्बर्ट कुछ विशेष प्रिय नही है, कम से कम गेटे जितना नही। पर उसमे सयम है, वह कभी प्रणयके उन्मादमे नही खोती, उन्माद उसे हो ही नही सकता। लोतीका उससे विवाह हो चुका है। फिर भी वह गेटेमे निरन्तर मिलती है, पर ईमानदारीसे, पतिके साथ पूरी वफादारी बरतती। गेटेकी ओरसे वह कभी उदासीन, कभी विमन न हुई। उसी पुरानी रीतिसे, पुराने प्यारसे मिलती रही। सालो। फिर एक रात जब

अल्वर्ट नही था, गेटे अपने कमरेमे वैठा कुछ लिख रहा था, नौकरने प्रवेश कर कहा, फ्राऊ चारलोती वूथ।

गेटे—[वेगसे उठते हुए] स्वागत, लोती! वडे भाग्य जो पग इधर फिरे। आज अकेले कैसे ?

लोती—आज गेटे, अल्वर्ट नही है। पर मै अकेली भी नही हूँ, जोहान।

गेटे—[इधर-उधर देखता हुआ] कहाँ ? कोई तो नही है। किसके साथ आई ?

लोती—[धीरेसे] अपने प्रोमेथियसके साथ, उसके फैले असीम डैनोकी रक्षामे, उसके फैले प्यारके घेरेमे।

गेटे—[कुछ गम्भीर होकर, भारी घहराती आवाजमे] क्यो सोया उन्माद जगाती हो, लोती ? क्यो खामोश साजको छेडती हो ? क्या मतलव इस तेवरका ?

लोती—मतलव कि अभिसार करने आई हूँ। अपने प्रिय जोहानसे मिलकर प्यारका भार हल्का करने।

गेटे—नही समझा, लोती, और समझाओ भी नही वरना सीवन टूट जायेगी, सीवन जो सालो रसमे डूवती उतराती रही है। न तोडो उसे।

लोती—सुनो, गेटे! आज मै तुमसे कुछ साफ-साफ वात करने आयी हूँ। इधर आ जाओ, इधर पास।

[गेटे धीरे-धीरे पास आ जाता है। उसके पैरोंके पास घुटनोके वल वैठ जाता है।]

लोती—नही-नही, कुर्सीपर वैठो। रहने दो यह भूमिका और ध्यानसे मेरी वात सुनो।

[गेटे चुपचाप कुर्सीपर वैठ जाता है। और चुपचाप देखता रहता है]

लोती—गेटे, तुम समझते हो मैं तुमसे दूर-दूर रहने लगी हूँ। मैंने तुम्हे छोड दिया है, इसलिए कि अल्वर्टसे व्याह कर लिया है। भूलते हो, गेटे। आज भी इस हृदयमे प्यारकी आग वैसे ही धधक रही है जैसे पहले धधकती थी। सुनते हो, गेटे!

गेटे—[बहुत हल्केसे] सुनता हूँ। कह चलो।

लोती—आग पहले भी हियेमे धधकती थी, आज भी धधकती है। पर आज तुम उन राखमे दबी सुलगती चिनगारियोको देख नही पाते। और मैं चिनगारियोको ज्वालाका रूप नही दे सकती। क्योकि तुम और वह अल्वर्ट निश्चय दोनो उनके बहुत पास हो, लपटोंमे दोनोका अनिष्ट हो सकता है। पर विश्वास करो, दोनोको गरम रखनेसे इन्कार मैं नही करती। मैं फिर भी तुम्हे प्यार करती हूँ, कवि।

[लोती चुप हो जाती है, गेटेको देखती है]

गेटे—चुप कैसे हो गई, लोती?

लोती—इसलिए कि तुम कुछ कहना चाहोगे।

गेटे—मै? नही।

लोती—नही, गेटे, तुम्हारे मनमे कुछ है, पूछो।

`—सचमुच अगर तुम मुझे प्यार करती थी, लोती, तो तुमने मेरे विवाह के इशारोको ठुकरा क्यो दिया?

` ी—क्योकि, गेटे, तुम विवाहके लिए नही बने हो। विवाह करके बँधना होता है। तुम बँध नही सकते, विवाह तुम्हारे लिए नही है। और यदि तुमसे विवाह करती, तो तुम्हारे साथ मैं भी नष्ट हो जाती। आज जीवित रहकर तुम्हारी भी रक्षा, दूरसे ही सही, कर पाती हूँ। और तुम्हे यदि प्रस्ताव करनेका अवसर देती तो उसे अस्वीकार कर तुम्हे अपमानित करना मुझे अगीकार

न था। पर तुम कही टूट न जाओ। मैं भी टूट न जाऊँ, इससे मेरा व्याह कर बँध जाना नितान्त आवश्यक था। पर अब जो इधर तुम्हारी बढती हुई गम्भीरता देखी तो रहा न गया। आई कि एकबार सब कुछ तुमसे कह तो दूँ। तुम्हे, 'फाउस्ट'के रचयिताको स्थिति समझते देर नही लगनी चाहिए।

गेटे—[उच्छ्वास छोडकर] लोती, घाव भरा न था, पर उसे दबा रखा था। अब शायद वह फिर एक बार खुल जाए। पर मैं तुम्हे गलत नही समझूँगा। जानता हूँ, तुमसे गलती नही हो सकती, नारीसे गलती नही होती। सही, तुमने अगर वह ससार न सम्हाला होता तो सारा उजड गया होता, मिट गया होता। न तुम होती न मैं होता। आज हम दोनो है, पर, खैर, कैसे है वह नही कह सकता।

लोती—गेटे, मनको मत धिक्कारना। उसने अनुचित कुछ नही किया है। उसे केवल सयमका कवच दो।

गेटे—दूँगा लोती, दूँगा उसे सयमका कवच। पर मनमे कवचका भार धारण करनेकी शक्ति है या नही, सो नही कह सकता। चाहूँगा कि तुम्हारी, अल्बर्टकी, राह न काटूँ।

लोती—नही, गेटे नही। इसीलिए आज मैं यहाँ आयी हूँ, सुनसान रातकी राह, अकेली। कोई कुछ भी कह सकता है, पर आई हूँ कि हम सब एक राह चले, जिसमे राह काटनेकी बात ही न आये। बोलो, चलोगे ?

गेटे—नही कह सकता, लोती, पर प्रयत्न करूँगा। अभ्याससे अँधेरी कठिन राह भी सूझने लगती है, सर हो जाती है। कोशिश करूँगा।

लोती—कोशिश करो, गेटे, बस कोशिश करो। सब सम्हल जायगा। और न भूलो कि लोती आज भी सूने दिलके वीरानेमे एक मूरत निहारा करती है, कुछ गुनगुनाये स्वरोको याद करती है, गुनगुनाती है।

तुम जानते हो, गेटे, वह मूरत किसकी है, वे गुनगुनाये स्वर किसके है ?

गेटे—जाओ, लोती, अब जाओ।

लोती—जाती हूँ, जोहान। मेरे प्रेमके एकमात्र अवलम्ब, जाती हूँ। चली! तुम सुखी रहो! जियो, कि मै भी जिऊँ। अलविदा, मेरे सदाके सहचर, विदा!

वाचक—गेटेका विदा-स्वर शायद चारलोती न सुन सकी। वह तब तक चली जा चुकी थी। गेटे अवसन्न पडा रहा, उसी कुर्सीपर घण्टो। उसे यह भी ख्याल न रहा कि रातके अँधेरेमें लोती अकेले आयी है, उसे पहुँचाना होगा।

[सालो बाद]

वाचक—गेटे अपनी स्थितिसे बेचैन है। पतझडके बाद सर्दियां आई है, अब उसे होमर नही सुहाता। ओसियनकी रुग्ण कल्पना ही उसके हृदयको छू पाती है। अपने ही समान नायककी कल्पना कर वह 'तरुण वर्दरके विषाद' उपन्यास लिख डालता है। अन्तर बस इतना है कि उपन्यासका नायक वर्दर अपनी स्थितिसे बेकाबू होकर आत्मघात कर लेता है। गेटे चुपचाप दूर चला जाता है। उपन्यास जर्मन समाजके ऊपर बमकी तरह फट जाता है। लोती अपना औचित्य अब भी निभाती है। पर गेटे दूर होटलके कमरेमे हालकी लिखी कविता पढता है।

[आवाज पहले धीरे-धीरे गुनगुनाती-सी, फिर मधुर विकम्पित गायन, हल्के वाद्यका स्वर—]

प्राण, मेरा मन न जाने आज कैसा हो रहा है,
आज जैसे विजन वन मे विकल मानस रो रहा है,

आज मन पर बिजलियाँ है टूटती आतीं निरन्तर,
आज रग-रग शिथिल, तनगति मन्द मन्थर,
आज अन्तर मथित विचलित शान्ति अपनी खो रहा है,
प्राण, मेरा मन० ।

रागिनी है विलख पडती, चाँदनी है दहन करती,
मलयवारि न क्लान्ति हरती, क्षुब्ध मनमे ग्लानि भरती,
आज तन यह वेदनाका भार जैसे ढो रहा है,
प्राण, मेरा मन० ।

आज वाणी मूक, कुण्ठित कण्ठ, क्षण-क्षण गात कम्पित,
वक्ष शक्ति विसार, पल-पल आह भरता है प्रलम्बित,
यातनासे द्रवित कण-कण आज जैसे सो रहा है,
प्राण, मेरा मन० ।

स्वेदसिक्त विभोर तन है, नीर-बोझिल नयन-पथ है,
चेतना है मूढ तन्द्रित, कल्पनाका भग्नरथ है,
अश्रु कणसे आज विरही यक्ष हार पिरो रहा है ।
प्राण, मेरा मन० ।

आज इस अन्तरगगनमे क्षुब्ध झझावात उठते,
आज क्रन्दनवारिसे जैसे हमारे प्राण घुटते,
काल आज कराल अपने कुलिश-पाश सँजो रहा है,
प्राण, मेरा मन० ।

प्रणय का वह राग गा दो, राग जो सम्बल हमारा,
अन्यथा मृतप्राय है हतभाग्य यह विरही तुम्हारा,
घोर दुर्दिन मे यहाँ जो आज धीरज खो रहा है,
प्राण, मेरा मन० ।

वाचक—उसी होटलमे वाइमारका तरण ड्यूक ठहरा हुआ है । कविताका स्पदित वाचन वह सुनता है, व्यग्र हो उठता है । वह स्वय प्रणय-

कातर है। जान लेनेपर कि कवि गेटे है, वह उसे वाइमार चलनेको आमन्त्रित करता है। गेटे निमन्त्रण स्वीकार कर लेता है। वही वह वीगाड और शिलरसे मिलता है, वहीं उसके प्राय पचास वर्ष व्यतीत होते है, कवि शासक, राजनीतिज्ञके रूपमे। वहीं वह फ्रासीसी राज्यक्रातिका शोर सुनता है। वास्तिलकी गिरती दीवारोकी धमक, लुई और मारी अन्त्वानेतके गिरते सिरोकी करुण आवाज और उस रोब्सपियरके सिरके गिरनेकी, जिसने गिलोतिनकी ओर जाते-जाते भी अपने बालोमे पाउडर लगाया था। और गेटेने व्यगपूर्वक मुसकरा दिया था। नेपोलियन सम्राट् होकर जेनामे जर्मनी, आस्ट्रिया और वाइमारकी शक्ति तोड चुका है, जहाँ गेटेका प्रभु स्वय वाइमारका ड्यूक हारकर सब कुछ खो चुका है। उसी वाइमारको फ्रेंच सेनाके सिपाही लूट रहे है। अब वे गेटेके घर पहुँचते है—

[गलियो सडकोपर रह-रह कर सेनाके भारी पैरोकी आवाज, लुटते घरोसे सिपाहियोके मारे बच्चो-बूढोकी आवाज, जब-तब चलती गोलियोकी आवाज, मरते हुओकी आवाज, शायद लुटती औरतोकी आवाज]

क्रिस्टिना—अब क्या होगा, जोहान ? सुन रहे हो यह ?

गेटे—सुन रहा हूँ। पर होगा क्या ? वही जो होता आया है। जो हो रहा है। आस्ट्रिया गया, प्रशा गया, वाइमार गया, रह जायेगी बस यही यतीमोकी पुकार, आसमानको छेदती दिशाओमे घुमडती।

क्रिस्टिना—काश आज एम्परर मेरे सामने होता !

गेटे—हँ-हँ, क्रिस्टिना, एम्परर मानवीय आधारोके परे है। जो वह उन्हीको देख पाता तो ये हरे-भरे खेत आज सहसा लाल लहूसे क्यो भर जाते ? आस्टरलित्स क्यो होता ? जेना क्यो होता ? वाइमारमे

यह खून-खराबी क्यो होती ? और रही तुम्हारे सामने एम्परर के होनेकी बात, तो उसका उत्तर प्रशा और आस्ट्रियाके राजकुल देगे। कवियोकी अभिराम कल्पनाओकी केन्द्र प्रशाकी रानीके सामने वह रह चुका हैं, गायकोकी स्वप्निल व्यजनाओकी आधार आस्ट्रिया की आर्चडचेजके सामने वह जा चुका है। भला उससे क्या होता है ?

[सिपाहियोकी आवाज़—मारो ! पकडो ! गोलीकी आवाज़, नौकरका गिरकर कराहना]

क्रिस्टिना—हाय, घुस आये। हेरासकी आवाज़ थी यह !

गेटे—मार डाला उसे !

[दोनोका बाहर जानेके लिए उठना। सहसा सगीनके साथ सिपाहियोका प्रवेश]

सैनिक १—लाओ, सब रख दो !

सैनिक २—बैठे ताक क्या रहे हो, जैसे कहीके डयूक हो !

[पासके कमरेमे ताले टूटनेकी आवाज़]

क्रिस्टिना—हाय, सब तोड डाला !

गेटे—क्रिस्टिना, धीरज !

सैनिक ३—[प्रवेश करता हुआ] तिजोरीकी चाबी दे दो, जल्दी दे दो !

गेटे—[चुप]

कप्तान—[प्रवेश करता हुआ] चाबी मिल गई ?

सैनिक ३—उठता क्यो नही ! बैठा है जैसे डयूक है।

[गेटेकी ओर सगीन लिये बढता है]

क्रिस्टिना—ज़ालिम, ड्यूकमे बढकर है वह, ससारके कवियोका मुकुटमणि गेटे। [गुच्छा फेंककर] ले चावियाँ।

सैनिक—हा, हा, ज़ालिम, खूबसूरत ज़ालिम ? कवि ! हा, हा, कवि ?

कप्तान—ठहरो, ठहरो। क्या कहा ? क्या गेटे ? वोल्फगाग गेटे ?

क्रिस्टिना—जोहान वोल्फगाग गेटे ! वाइमारका डिप्लोमेट-जेनरल वोल्फगाग गेटे, कवि गेटे। यह कौन आ रहा है ?

[सहसा दौडते शिलरका प्रवेश, कप्तानको रुक्का देते हुए]

शिलर—कप्तान, यह एम्परका हुक्म !

[कप्तान पढता है]

[शिलरसे मिलनेके लिए गेटे बढता है। क्रिस्टिना हाथ बढा देती है, शिलर चूमता है, दौडकर फिर वह गेटेके गले लग जाता है।]

क्रिस्टिना—खूब आये शिलर !

गेटे—शिलर !

शिलर—गेटे !

कप्तान—महाकवि, मैं शर्मिन्दा हूँ ! यह एम्परका हुक्म है—'कवि गेटेके घरकी रक्षा करो'।

क्रिस्टिना—घर तो उजड चुका है। रक्षा अब किसकी होगी ?

गेटे—शान्त, क्रिस्टिना !

कप्तान—मुझे बडा खेद है ! आगे और धोखा न हो इससे सैनिक आपके द्वारकी रक्षा करेंगे। अल्विदा !

[सैनिकोंसे] दो सैनिक यहाँ रहकर बराबर घरकी रक्षा करो। किसी ओरसे कोई हमला न हो, सावधान !

[सैनिक और कप्तानका प्रस्थान]

गेटे—खूब आये, शिलर !

[illegible] नूब आये ! जान बच गई।

शिलर—शुक्र खुदाका ! जीससकी हजार शुक्रिया !

गेटे—जेनाका क्या हाल है ?

शिलर—जेना तबाह है, मारकाट मची है, ड्यूक बचकर निकल गया है।

गेटे—वाइमारको क्या कहूँ ?

शिलर—वाइमारका हाल देखता आ रहा हूँ।

वाचक—गेटे, क्रिस्टिना और शिलर धीरे धीरे दूसरे कमरेमे जाते हैं। सोनेके कमरेमे, ग्रन्थागारमे। विस्तर विखरे है, पुस्तकें विखरी है, वक्सोंके ताले टूटे पडे है, चीजे, जो बची है, बाहर फैली है, बाकी कीमती चीजे सिपाहियोंके किट-बैगोमे चली गई है।

गेटे—शिलर, देख रहे हो ?

शिलर—देख रहा हूँ। शर्म !

गेटे—[व्यगसे] फ्रासीसी राज्यक्रान्तिका यह शालीन परिणाम !

शिलर—गेटे, अन्याय न करो, यह एम्पररके कारनामोका परिणाम है, कोर्सिकाके लुटेरेका। नेपोलियनका और नेपोलियन क्रान्तिका शिशु नही, उसका हत्यारा है।

गेटे—क्रान्ति और एम्परर ! 'त्रासका राज' और नेपोलियनके कानून ! [गेटे चुपचाप कुर्सीपर बैठ जाता है, घरसे बाहर दूर और निकट सैनिकोकी आवाज, लूट-खसोटकी आवाज, गोलीकी आवाज, घायलोकी आवाज]

वाचक—गेटेके मरनेके दो वर्ष पूर्व। क्रिस्टिना अब वृद्ध गेटेकी पत्नी है। वाइमारके अपने घरमे दोनो बैठे है। पतझडके दिन। आसमान सूना सूना लगता है। पेड नगे है, वल्लरियाँ नगी है, एकाधपर पत्तियाँ छायी हुई है। दिनका तीसरा पहर है। गेटेका विशाल शरीर बुढापेसे सिकुड गया है, बाल भी कुछ झड गये है, श्वेत केशोके गुच्छे फिर भी शालीन सौन्दर्य व्यक्त करते है। क्रिस्टिना गेटेसे बहुत छोटी है, प्राय पचीस वर्ष। पचाससे ऊपरकी है पर रूप रग कुछ ऐसा है कि चालीससे अधिक नही लगती। सालो महाकविके साथ मित्र भावमे उसीके घरमे रह चुकी है और अब उसने उससे व्याह कर लिया है। तीसरे पहर गेटे उससे साहित्य

पढवाकर सुना करता है। अभी अभी ओसियनका एक अश सुनाया है।

गेटे—क्रिस्टिना, रहने दो। आज बस बस।

क्रिस्टिना—क्या बात है, प्रिय, आज ऐसी उदासी क्यो ? पढ रही थी और लगता था कि तुम्हारा मन कही और है।

गेटे—सही, क्रिस्टिना, मन मेरा काव्यसे दूर था।

क्रिस्टिना—कहाँ ? क्या स्मृतियाँ घूम पडी थी।

गेटे—हाँ, स्मृतियाँ। कही जाती नही वे। मनके कोनेमे उनका अवार जैसे दवा रहता है, कुछ समान-सा, जहाँ उधर भटका कि जैसे ऊपर का ढक्कन खुल गया और एकके बाद एक वे निकलने लगती है। मनुष्य नही जानता, कितनी शक्ति है उसमे। दूर दिनो-सालो-की सँजोयी स्मृतियोका वह धनी है, कितना विशद, कितना विपुल कोष है उसका, क्रिस्टिना!

क्रिस्टिना—वडा विपुल, असीम। पर क्या कभी उन्ही स्मृतियोकी याद मन-को दुःखी नही कर देती ?

गेटे—सही, क्रिस्टिना, दुधारी है वे। दोनो ओर चोट कर सकती है, करती है। कभी-कभी आदमी उनसे बचना भी चाहता है, बच पाता नही।

क्रिस्टिना—भला आज किसकी याद आयी, जोहान ?—फ्रेड्रिकाकी ? चारलोतीकी ? मिनीकी ?

गेटे—नही रानी, उनकी नही, यद्यपि उनकी याद भी आती है। अनेक बार आयी है, वह गये जलकी तरह, अचानक उड आये बादलो-की तरह। पर अभी उनकी याद नही कर रहा था।

क्रिस्टिना—फिर किसकी, प्रिय ?

गेटे—आज मुझे अपने सिद्धान्तगुरुकी याद आयी, हर्डरकी और उस

अभिनव गायक शिलरकी, जो देखते-ही-देखते दिगन्त तक व्याप्त हो गया था और देखते-ही-देखते उसीमे एक दिन विलीन भी हो गया।

क्रिस्टिना—पर हर्डरकी भावसत्तासे आज तुम कितने दूर हो, कवि!

गेटे—सही, क्रिस्टिना, पर हर्डर यदि न होता तो शायद मैं भी आज न होता। बाकी, हाँ, आन्दोलनोसे अब मेरा सपर्क न रहा। शिलर सभवत आज नही होता जो मैं हूँ।

क्रिस्टिना—शिलर, हाँ, मधुर गायक शिलर!

गेटे—और लेसिंगकी याद आयी।

क्रिस्टिना—लेसिंगकी, जिसके बुद्धिवादके अखाडेको तोडनेमे तुम्हारा खासा हाथ रहा है। [हँसती है]

गेटे—सही, पर लेसिंग कितना महान् था, इसकी कल्पना तुम नही कर सकती, क्रिस्टिना। उसकी कल्पना वह कोई नही कर सकता जिसने लेसिंगको न देखा, उसके युगको न जाना।

क्रिस्टिना—प्रिय, तुम विषादकी ओर वह चले। कही तुम्हारे उपन्यास 'वर्दरके विषाद'की भाव-भूमि तुम्हारे मनमे न उतर पडे। निश्चय पतझडका प्रभाव तुम्हारी चेतनापर पडने लगा है।

गेटे—सही, क्रिस्टिना। पर उसकी एकमात्र दवा तुम हो। तुम जो, इतने पतझड, इतने शिशिर देखकर भी सतत वसन्त बनी रही।

क्रिस्टिना—उसका कारण है, कवि।

गेटे—कहो, कालको चुनौती देनेवाली, बोलो कारण उसका?

क्रिस्टिना—कविका सामीप्य। तुम्हारे निकट हजार साल रहकर भी मै अपनी कान्ति सुरक्षित रख सकती हूँ, प्रियवर। [हँसती है]

गेटे—[हँसता हुआ] पर सतत यौवनको कालिदासके साहित्यमे, सस्कृतकी परम्परामे क्या कहते है, जानती हो न?

क्रिस्टिना—जानती हूँ—उर्वशी, मेनका। यानी, कवि, अब तुम गालोंपर उतर आये न ?

[दोनो हँसते है]

गेटे—आज, क्रिस्टिना, सुबहमे ही कालिदासकी याद आती रही है, महाकविकी शकुन्तलाकी। कितनी सरल कल्पना है रानी, कितनी सुकुमार, कितनी मदिर, कितनी शालीन !

क्रिस्टिना—और होमर, ओसियन ?

गेटे—ठहरो, क्रिस्टिना, ओछा न करो उस देश और कालका अतिक्रमण कर जानेवाले कविको। वह कैशोर पार तारुण्यकी भूमिपर यौवनका स्वस्थ भोला पदन्यास, प्रकृतिकी उन्मुक्त वायुमे कामाङ्कुरका प्रस्फुटन, और

क्रिस्टिना—और असमय ही छलिया भ्रमरका महर्षिकी अनुपस्थितिमे आक्रमण ! [हँसती है]

गेटे—[हँसता हुआ] और दरबारमे नारीत्वका कितना उद्दाम चुनौतीभरा आचरण। सब याद आता रहा, एकके बाद एक। क्रिस्टिना, भला वह करुण पद तो सुना दो। तुम्हारी वाणीसे महाकविकी भारती बडी मधुर लगती है।

क्रिस्टिना—कौन-सा ?

गेटे—मरीचिके आश्रमवाला। दुष्यन्त शकुन्तलाको लाञ्छित कर दरबारसे निकाल देता है। वह मरीचिके आश्रममे चली जाती है। अगूठी देखकर जब राजाको उसकी याद आती है, राजा हृदयको लक्ष्यकर तब कहता है, 'हत् हृदय, जब मृगनयनीने बार-बार तुम्हे जगाया, कहा, उठो, मुझे चेतो, तब तुम न चेते और आज जब दुःख तुम्हे ठोकर मार रहा है तब तुम उसकी गहराई नापने उठ पड़े हो, अभागे !' फिर दुष्यन्त देवासुर-संग्राममें चला जाता है। वहाँसे जीतकर जब लौटता है तब मरीचिके आश्रममे उतर पडता है।

उस शान्त वातावरणमे कण्व नही, मालिनी तटका वह ब्रह्मचर्याश्रम नही, दुर्वासा नही, मरीचि है, पके जीवनका फल भरत है, नई कोपलोंके फूटनेसे पहलेका पतझड है। और तभी वही चुपचाप पति द्वारा परित्यक्ता, भाग्यकी मारी शकुन्तला अपना विरहव्रत निभा रही है। क्रोध पिघल गया है, राग, साधनाके कारण, वरदान बन गया है, व्रत कठिनसे कठिन वैराग्यको भी जीत लेनेकी शक्ति रखने लगा है। दुष्यन्त स्तब्ध रह जाता है, जब उसे पतिके व्रतमे लीन देखता है—शकुन्तला मलिन वस्त्र पहने है, कठोर नियमोंके अनुकूल एकवेणी धारण किये हुए अत्यन्त कठोरहृदय पतिके लिए अत्यन्त कठिन विरहव्रत कर रही है।

क्रिस्टिना—अच्छा, वह वसने परिधूसरे वसाना ?

गेटे—हाँ, वही, 'वसने परिधूसरे वसाना।'

क्रिस्टिना—अच्छा सुनो [वाद्यका हल्का मधुर स्वर]—

> वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः।
> अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति॥

नई दिल्लीमें तथागत

दृश्य १

[तुषित स्वर्गसे बुद्ध जब पृथ्वीपर उतरने लगे तब पालमके हवाई अड्डेपर बडी चहल-पहल देखी। हवाई जहाजोको उडते, चढते-उतरते देखा, उनकी आवाज कानके पर्दे फाडने लगी। तथागत और आनन्द दोनो काषाय पहने जो वहाँ आसमानसे उतरे तो चकित इधर-उधर देखने लगे। उनको लेने पणिक्कर आये थे। दो काषायधारी ज्योतिष्मान् व्यक्तियोको उन्होंने भूमिपर उतरते जरूर देखा पर पहचान न सके। फिर उनकी ओर धीरे-धीरे बढे।]

पणिक्कर—[अपने आप] ये तथागत तो हो नही सकते। मूर्तियोसे सर्वथा भिन्न है। वैसे स्वप्नमे जो समय दिया था वह तो हो चुका। [घडी देखकर] पृथ्वी और स्वर्गकी घडीमे कुछ फर्क पड सकता है। चलूँ इन्हीसे पूछूँ, सम्भव है ये उनके पार्षद हो, इन्हें पहले ही भेज दिया हो। इन्हीसे पूछूँ [जाते है]।

तथागत—आनन्द !

आनन्द—सुगत !

तथा०—पणिक्कर नही आये ! समयसे सपना दे दिया था न ?

आनन्द—हाँ तथागत, सपना तो समयसे दे दिया था।

पणि०— [पास जाकर] नमामि, भन्ते ! मै पणिक्कर हूँ। तथागत क्या पधार रहे है ? आप सम्भवत उनके अग्रसेवक है।

तथा०—[आनन्दसे पालीमे] यह क्या आनन्द ?

आनन्द—चकित मै भी हूँ सुगत।

तथागत—[प्रत्यभिवादन करते हुए हिन्दीमे] तथागतको पहचाना नही ?

आनन्द—[पणिक्करसे तथागतकी ओर इशारा करते हुए]—आप, तथागत ?

पणि०—[चौंक कर] ऐ ! तथागत ? पर तथागतकी शकल तो—

आनन्द—मूर्तियोसे नही मिलती ।

[तथागत और आनन्द एक दूसरेको देखकर हँसते हे, पणिक्कर लजाते है ।]

पणि०—[सकुचाते हुए] जी-ई, भन्ते ।

आनन्द—मूर्त्तियाँ काल्पनिक हैं, मित्र । तथागतके निर्वाणके पाँच सौ साल पीछे बनी । पहली मूर्ति यूनानी शिल्पीने कोरी । और मूर्ति-से-मूर्ति बनती गई । शक्ल मिले कैसे ?

पणि०—[तथागतसे सिर झुकाकर]—सुगत, अनजाने दोष हुआ, क्षमा करेगे ।

तथा०—[हँसते हुए] कुछ बात नही, पणिक्कर, कोई बात नही ।

पणि०—सुगत, पहले एक बात बता दे—सस्कृतमे बोलूँ, पालीमे या हिन्दी मे ? हिन्दी भाषा-भाषी मै स्वय नही हूँ पर अभ्यास कर लिया है ।

तथा०—सस्कृत बोलना तो मैने जीवन-कालमे ही छोड दिया था, वैसे सुना है कि यहाँ कुछ ऐसे लोग भी है जो सस्कृतको ही राष्ट्रीय भाषा बनाना चाहते है ! [तीनो हँसते है] पाली बोलनेकी भी आवश्यकता नही । हिन्दीका अभ्यास कर लिया है । आनन्दने सतर्क कर दिया था कि यदि हिन्दीमे न बोला तो काले झण्डोका सामना होगा ।

पणि०—[मुसकराते हुए] अनुमति दे तो एकाध बाते और समझा दूँ—

तथा०—बोलो !

पणि०—जब किसी राष्ट्रका प्रधान, प्रधान मन्त्री या राजनीतिक अतिथि आता है तब हमारे राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री या 'चीफ आफ प्रोटो-

कल' स्वागतके लिए आते है। तथागत तीनोसे भिन्न है, इससे स्वागतके लिए उनका आना नही हुआ। तथागत उनके यहाँ न आनेका अन्यथा न मानेगे। और सुगत सार्वजनिक स्वागत पसन्द नही करेगे। वैसे सुगत चाहे तो उपचारत राष्ट्रपति या प्रधान मन्त्रीसे मिल सकते है। दोनो सज्जन है, मिलना स्वीकार कर लेगे। मिलकर प्रसन्न होगे।

आनन्द—नही, पणिक्कर, तथागत किसीसे मिलना नही चाहेगे। उनका उद्देश्य दूसरा है। नगर देखकर लौट जायेंगे।

पणि०—पर एक प्रेस-कान्फ्रेन्स तो करनी ही होगी, भन्ते!

तथा०—प्रेस-कान्फ्रेन्स ? वह क्या ?

पणि०—वही समाचार-पत्रोके प्रतिनिधियोसे मिलना, उनके प्रश्नोका उत्तर देना, तथागत।

तथागत—समाचार-पत्र ?

पणि०—हां, सुगत, उनमे खबरे छपती है। उन्हे पता नही है, वरना इस हवाई अड्डेपर ही अखबार बेचनेवाले चिल्लाते होते 'दिल्लीमे तथागत! दिल्लीमे तथागत!'

[तथागत और आनन्द एक-दूसरेको कौतुकसे देखते है।]

आनन्द—फिर तो प्रेस-कान्फ्रेन्ससे हो-हल्ला मचेगा। इसे न करे तो कैसा ?

पणि०—उसके बिना कैसे बनेगा, भन्ते ? [तथागतसे] सुगत, उसे अस्वीकार न करे। मै उसके लिए एकान्तका प्रबन्ध कर लूँगा। फिर कोई बात छपेगी भी नही समाचार-पत्रोमे। चाहे सार्वजनिक स्वागत न रखे।

तथा०—अच्छा, कर लो! पर अन्तिम दिन।

पणि०—भला, सुगत।

[मोटरमे प्रस्थान]

दृश्य २

[राष्ट्रपति-भवनका संग्रहालय । पणिक्करने अध्यक्षको मूर्तियोंका रहस्य समझानेके लिए बुला लिया । उसे बताया नहीं कि समागत तथागत और आनन्द हैं । अध्यक्ष बुद्धको उनकी मूर्तियाँ समझाने लगा—]

अध्यक्ष—[मथुराकी खडी मूर्ति दिखाकर] यह बुद्धकी मूर्ति है, अभय-मुद्रामें खडी । ऐसी मूर्ति बुद्धकी कभी न बनी ।

आनन्द—तथागतने तो अपनी मूर्ति बनानेका निषेध कर दिया था न ?

अध्यक्ष—वही तो हीनयान था ।

तथा०—हीनयान ?

अध्यक्ष—हाँ, छोटा शकट, जैसे महायान, बडा शकट ।

तथा०—बुद्धसे इन शकटोंका भला क्या सम्बन्ध है ?

आनन्द—ठहरिए, आपको शुरूसे समझाना होगा—देखिए, जब भगवान्‌ने अपनी मूर्ति बनानेका निषेध कर दिया तब केवल उनके पद, छत्र बोधि-वृक्ष आदि प्रतीकोंमें ही उनकी उपस्थितिका बोध कराया जाता था । फिर जब पहली सदीमें बोधिसत्त्वका महायान चला तब समीपके देवताकी आवश्यकता पडी । इससे बुद्धकी मूर्ति बनी, बोधिसत्त्वोंकी मूर्ति बनी, आनन्द आदि उनके चेलोंकी बनी ।

तथा०—पहली सदी ईसवी ! बोधिसत्त्व ! महायान !

[आनन्द कुछ चकित हैं, पणिक्कर सकुचा रहे हैं]

अध्यक्ष—ईसवी सदी, ईसाकी । ईसा—क्राइस्ट, उसीके सबब ए० सी०, बी० सी०—समझे ?

[तथागत आनन्दकी ओर देखते हैं, दोनों चुप हैं]

बोधिसत्त्व, सम्बुद्ध होनेके पहलेकी स्थिति है । उसने कहा था—

बुद्धका बताया अर्हत्का मार्ग स्वार्थपर है, अकेले निर्वाणका, मै तो तब तक निर्वाण न लूँगा जब तक एक व्यक्ति भी अनिर्वण्ण रह जायगा। अर्हत्का मार्ग हीनयान है, उसपर एक ही प्राणी चढकर भवसागर पार हो सकता है। महायान हमारा मार्ग है। महा-यान, जिसपर चढकर सभी पार हो सकते है। इसीसे बोधिसत्त्वकी मूर्तियाँ बुद्धसे सख्यामे कुछ कम नही है।

आनन्द—[**तथागतसे स्वर्गकी बोलीमे जो अध्यक्ष और पणिक्कर नहीं समझ पाते**] सुना, भगवन्, यह बोधिसत्त्व तो बडा अगिया-वैताल निकला! आप ही पर लकडी लगा गया! आपके पन्थको हीनयान बताकर अपना महायान बना गया। बडा सयाना निकला यह तो। [तथागत मुसकराते है]

आनन्द—पर यह मूर्ति कैसी है? इसके सिरपर यह क्या है?

अध्यक्ष—'बम्प आफ इन्टेलिजेन्स,' प्रतिभाका चिह्न, और यह ऊर्णा है।

आनन्द—और ये लम्बे-लम्बे कान भी क्या बुद्धके थे?

अध्यक्ष—[कुछ रुखाईसे] जी [**पणिक्कर सकुचाते हैं**] [**दशावतारकी मूर्ति दिखाकर**] इसमे भी यह नवी मूर्ति बुद्धकी ही है। यहाँ ये विष्णुके अवतार है।

आनन्द—विष्णुके अवतार!

अध्यक्ष—हाँ, महायानके बाद वह तो होना ही था।

आनन्द—[तथागतसे स्वर्गकी भाषामे] लीजिए, सुगत, जिस ब्राह्मण परम्परापर आपने प्रहार किया था, जिसके देवता विष्णु-ब्रह्मा-शक्र तथागतके पार्षद थे, उन्हीकी श्रेणीमे, वह भी अवतार, और गौण अवतार बनाकर, सुगतको बैठा दिया!

[तथागत मुसकराते है]

[मध्याह्न हो गया है। पणिक्कर तथागतको लचके लिए चलनेका आग्रह करते हैं। फिर धीरे-से अध्यक्षके कानमे कुछ

कहते है। वह आँखें फाड-फाडकर तथागतको देखने लगता है, फिर बार-बार उनकी ओरसे उनकी मूर्तियोकी ओर देखता है। बुद्ध आदि चले जाते है।]

अध्यक्ष—[व्यंगकी हँसी-हँसता हुआ] हुँ! तथागत बने है! जैसे मै तथागतको जानता ही नही। इन्ही मूर्तियोमे मेरी जिन्दगी गुजरी और मै बुद्धको न पहचानूँगा! ढाई हजारवाँ साल है न निर्वाण-का, एकसे एक नजारे देखनेमे आयेंगे। एकसे एक भेस देखनेको मिलेंगे। देखो न, क्या रूप बनाया है! और यह पणिक्कर! राजनीति जो न करा दे!

दृश्य २

[लोकसभाकी राहमे]

आनन्द—युग बदल गया है, सुगत, लोगोके व्यवहार समझमे नही आते।

तथा०—हाँ, युग बदल गया है। तुमने जो दुनिया देखी थी उसको आज ढाई हजार साल हो चुके।

पणि०—जी, तबसे हमारी संस्कृतिमे बडा अन्तर पड गया है। इस बीच अनेक संस्कृतियोका हमारी संस्कृतिपर प्रभाव पडा, अनेक संस्कृ-तियाँ हमारी संस्कृतिमे घुली-मिली, हमारी संस्कृति नवीन हुई।

[तथागत और आनन्द दोनो पणिक्करका मुँह देखते है]

आनन्द—संस्कृति क्या ?

पणि०—आ हाँ, संस्कृति हमारा नया गढा हुआ शब्द है। यह हमारा आचार-व्यवहार, रहन-सहन, आहार-लेबास, आदर्श-विचार, धर्म-दर्शन आदि प्रकट करता है।

आनन्द—नर-नारी, उनकी वेश-भूषा कितनी बदल गई है ! नारियोकी तडक-भटक देखकर डर लगता है । तथागतने कहा था—

पणि०—कहा था तथागतने । पर हमारे जीवनके तो हर भागमे नारी नरके साथ है ।

तथा०—सब मिट गया, आनन्द ।

आनन्द—संघ मिट गया, सुगत ! सुगतकी वाणी सच हुई ! सुजाता-विशाखाका यह रूप ?

पणि०—संघ फिर पनप चला है, तथागत । पर निश्चय आजका गृहस्थ प्रव्रजित कम होता है । वैसे अपने देशमे साधुओकी सख्या कम नही है ।

आनन्द—लोगोकी आस्था मर-सी गई दिखती है । मन देख-सुनकर बोझिल हो जाता है ।

पणि०—इस युगने शिष्टाचारको नये मान दिये है ।

आनन्द—हॉ, सो तो देखता हूँ—शिष्टता बहुत है, आचार कम है ।

[तथागत आनन्दकी ओर भवोपर तनिक बल डालकर देखते है, आनन्द कुछ सहमकर चुप हो जाते हैं]

[राहमे पणिक्कर नई दिल्लीके मकान, विशाल भवन, सचिवालय राष्ट्रपति भवन आदि दिखाते चलते है]

पणि०—नई दिल्लीकी इमारते कैसी लगी, तथागत ? इनकी एकदृश्यता कितनी असाधारण है ?

तथा०—नही कह सकता, पणिक्कर । इन भवनोमे प्रवेश करते कदाचित् भय लगे । हॉ, इनमे एकदृश्यता है, इतनी कि उनका प्रभाव अनाकर्षक हो जाता है । विभिन्नता सौन्दर्यकी जननी है, इनकी ओ[illegible]नता सॉस नही लेने देती ।

पणि०—यह इण्डिया गेट है । इसकी शिला-शैलीको तनिक लक्ष्य करें, सुगत ।

तथा०—हाँ, देखना हूँ—भारतने शिल्पकी अनेक धाराएँ इस बीच ग्रहण की हैं। पर अनेक बार तो इनका उच्छिष्ट रूप ही देखनेको मिलता है। प्राचीन असूरी और यवन-ग्रीक शैलीके भोंडे-फूहड़ नमूने अधिक देखनेमे आते हैं। कहीं-कहीं पिछले कालके सासानी-शिल्पकी सुरुचिपूर्ण अनुकृति भी दिख जाती है। हाँ, आनन्द इस्लामी शिल्प निश्चय स्तुत्य है, पर वह भी पुराना ही है। देखता हूँ, भारतने इधर अपना कुछ नही किया है—केवल आभासोकी परम्परा खडा करता गया है। इसीसे इसके नर-नारी भी कृत्रिम यान्त्रिक प्राणी से लगते है। लगता है, आनन्द, कभी ये कुछ सोचते नही, स्वय। 'लेवल' लगा लेते है। नारियोमे असाधारण अनाकर्षण है, एक प्रकारका घिनौनापन, आनन्द, सघके लिए एक प्रकारसे इनसे कुछ खास डर अब नही है। पर आज तो मन ही नहीं रहा, आनन्द। [लम्बी साँस खीचते है]

[लोकसभाके द्वारपर। पणिक्कर तीनोके कार्ड मन्त्रीको दिखाते है। सब लोग भीतर पहुँच जाते है। दर्शक-गलरीमे बैठ जाते है। निर्वाणके ढाई हजारवे सालके समारोहके खर्चपर विचार हो रहा है।]

प्रधान मन्त्री—मै तो समझता हूँ कि हमे इस समारोहको राष्ट्रीय 'लेवेल'-पर लेना चाहिए।

[एक महान् गुजराती लेखक उठते हैं, अभी फिरसे चुनकर आये हैं। छरहरा-पतला बदन, सुदर्शन, सुरुचिसे सजे।]

गुज०—फिर सोमनाथके मन्दिरके निर्माणको राष्ट्रीय 'लेवेल' पर क्यो नहीं लिया जाता ?

प्र० म०—देखिए, मस्जिदोको मिलाये नही, वह और बात है। दूसरी

समझकी कितनी जरूरत हमारी आजकी दुनियाको है, अह बात यह है। सोमनाथके मन्दिर और इससे कोई निस्वत नही।

[एक वगाली सदस्य उठते है]

ब० स०—हमको वुद्ध जोयोन्ती शे कोछू बिरोध नही है। जरूर मानाइए वुद्ध जोयोन्ती। ओ हामरा है। दशावतारोमे हामरा वह एकटा अवतार है। वह वेश हैं। परन्तू हामरा बात यह है जे जब हीन्दू शवाका वात होता हैं, जन शघका वात होता है, राम-राज-परिषदका बात होता है तव कोछू बात राष्ट्रीय नही होता, सोमनाथका निर्मान राष्ट्रीय बात नही होता, वुद्धका हो जाता है, शेई वात हम कहना मांगता है। और कोछू बात नही है, शेई बात हम बोला—

[सब हँसते है।]

अध्यक्ष—आर्डर! आर्डर! [घण्टी]

तथा०—यह भारतका सथागार है ?

पणि०—सुगत, यह हमारा 'सयागार' है।

आनन्द—आसन प्रज्ञापक कहां है ?

पणि०—वहाँ, वह तिरछी नीची वारकी गाँधी टोपीवाले।

आनन्द—शलाका ? शलाकागाहापक ?

पणि०—अव यहाँ शलाका नही चलती, भन्ते, पर गुप्त मत देनेका प्रबन्ध है। मत या तो अध्यक्ष गिन लेता है या उसके लिए किसीको नियत कर लेते है।

[तथागत कुछ शान्त चिन्ताशील हैं।]

आनन्द—भगवान्‌ने कहा था—यदि देवताओंकी सभाको देखना चाहो तो वज्जियोंके कार्यशील राजाओंको देखो।

तथागत—देवता मिट गये, आनन्द, वज्जी मिट गये, लिच्छवी मिट गये, विदेह न रहे, मल्ल न रहे, शाक्य तो मेरे सामने ही नष्ट हो गये थे !

[इसी समय बाहर शोर मचता है—'विनोबा भावे जिन्दाबाद !' 'सर्वोदयका झण्डा फहरा दो !' 'लोहिया जिन्दाबाद !' 'कांग्रेसकी किसानी नीति मुर्दाबाद !' समाजवादी दलका जलूस निकला है उसीका लोक सभाके द्वारपर प्रदर्शन है। तथागत, आनन्दको लिये पणिक्कर बाहर आते हैं। जलूसमे एक गिमान सहसा छेड़ देता है 'भारतका डंका आलममे बजाया किया वीर जवाहरने' !—जलूसके नेता चिल्लाते हे—'अरे ! अरे ! यह नही, यह नहीं, यह गाना नही। अरे वह दिनकरकी कविता गाओ, 'जयप्रकाश नारायण' पर।' पर पहले रागने जोर पकड़ लिया। पूरा जलूस वीर जवाहरका आलममे डंका बजाना गा उठता है। लोक सभाके सोशलिस्ट सदस्य, जिन्होने प्रदर्शन सगठित किया था, घबड़ाकर 'हाय ! हाय !' करते बाहर निकल आते है। पर अब तो जवाहरका नाम अम्बर चूमने ही लगता है। तथागत और आनन्द चकित-चमत्कृत देखते रहते हैं।]

दृश्य ४

[प्रेस कान्फ्रेन्स। राजघाटके पास लानपर प्रेस-कान्फ्रेन्स हो रही है। अनेक अंग्रेजी हिन्दी पत्रोंके रिपोर्टर आये हुए हैं। सब भारतीय पत्रोंके ही प्रतिनिधि है। अंग्रेज और अन्य विदेशी पत्रकार इस कान्फ्रेन्समे अलग रखे गये है। उनपर विश्वास नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्धमे बड़ी सतर्कता रखी गई है।

सबसे प्रतिज्ञा करा ली गई है कि स्वान्त:सुखाय वे चाहे जितने प्रश्न तथागतसे करें, पर उन्हे छापें हरगिज नही। इसका पूरा इन्तजाम कर लिया गया है कि किसी प्रकारका 'स्कूप' सभव न हो सके। जिस प्रश्नका तथागत चाहे उत्तर दें, चाहे न दें। यदि उनमेंसे किसीका उत्तर बुद्धकी जगह आनन्द देना चाहे तो दे सकें। बुद्ध वीरासनमे बैठे हैं। कुछ हटकर आनन्द बैठे है, पास ही पणिक्कर, सामने पत्रकारोका समुदाय बैठा है।]

पणिक्कर—मित्रो, आप सबको पता ही है कि किन परिस्थितियोमे आजकी यह प्रेस-कान्फ्रेन्स हो रही है। आशा करता हूँ, आप लोग शान्त चित्तसे प्रश्न करेंगे। पर उसके पहले, मै तथागतसे प्रार्थना करूँगा कि वे दो शब्द आपसे कह ले।

तथा०—[बैठे-ही-बैठे] उपासको, सद्धर्मके शरणागतो, तुम्हारा मगल हो। तथागत इस धरापर आज कोई ढाई हजार वर्षोंके बाद आये है। आशा थी कि उपसम्पदा, प्रव्रज्याकी महिमा बढी होगी, निराश हुए। सघ, देखते है, विच्छिन्न हो गया।
[सब एक दूसरेको देखते हैं। किसीके पल्ले कुछ नहीं पडता। अलग-अलग कानाफूसी होने लगती है। पणिक्करसे लोग कहते हैं कि अब प्रश्नोका मौका दिया जाय। पणिक्कर आनन्दके कानमे कहते है, आनन्द तथागतके कानमे। तथागत चेष्टासे बता देते है कि उन्हे मजूर है। पहला प्रश्न 'पत्रिका'का प्रतिनिधि करता है जिसे राष्ट्रपति भवन सग्रहालयके बंगाली अध्यक्षने बुद्ध-सबधी अपनी प्रतिक्रिया बता दी है।]

पत्रिका-प्रति०—भगवन्, आपकी शक्ल हमारे सग्रहालयोकी आपकी मूर्तियोंसे क्यो नही मिलती ?

[बुद्ध चुप है—उत्तर देना नहीं चाहते—आनन्द भी चुप है]

हिन्दी पत्रिका-प्रति०—बोले, भगवन्, उत्तर दे।

[बुद्ध चुप]

हिन्दुस्तान टाइम्स—उत्तर तो देना चाहिए।

टाइम्स [बम्बई]—अच्छा, आप किस स्वर्गमे रहते है, तथागत ?

तथागत—सुगत निर्वाण है।

पत्रिका०—निर्वाण क्या ?

[बुद्ध चुप]

फ्रीप्रेस०—भगवन्, आपके निर्वाणकी तिथि क्या है ?

तथा०—वैशाख-पूर्णिमा।

क्रानिकल०—साल बतायें, तथागत।

तथा०—आजसे दो हजार पाँच सौ अट्ठावन वर्ष, नौ मास, तेरह दिन पूर्व।

अनेक पत्रकार—तिथि बताइए, तिथि, सवत्, साल।

आनन्द—तब कोई संवत् प्रचलित न था।

आर्यमित्र०—वाह, यह कैसे हो सकता है ? सृष्टि-संवत् तो सदासे है।

आनन्द—यानी मनुष्य-जन्मसे भी पहलेसे ?

आर्य०—जी।

आनन्द—उसका उपयोग भला कौन करता था ?

[तथागत, आनन्द, परिहासकर मुसकराते हैं।]

पत्रिका०—तथागतने जो अपने निर्वाणकी तिथि बतायी वह तो हमारी जयन्तीकी तिथिसे प्राय उनसठ साल पहले ही बीत गई।

[सभी पत्र उत्सुक हो उठते है]

पत्रकार [एक साथ]—हाँ, हाँ, यह कैसे ?

[बुद्ध चुप ?]

पत्रिका०—ओल्डेन्बर्ग फिर क्या झूठा है ? सेनार, लवी सब गलत है ?

टाइम्स—कर्न, ल्यूडर्स, टामस, सब गलत ?

[बुद्ध चुप है]

हिन्दुस्तान०—कावेल, डेविड्स, ब्लाख सब ?

पत्रिका०—आर अमादेर राखाल बाबू ?

[बुद्ध चुप]

[पणिक्कर देखते है कि बडी अभद्रता हुई जा रही है, तत्काल कान्फ्रेंस बन्द कर देते है । कैमरे 'क्लिक-क्लिक' बजने लगते हैं । पणिक्कर मना करते है कि कान्फ्रेंसकी शर्तके मुताबिक तस्वीर नही लेनी है । पर तस्वीरें तो ले ही ली गई ।]

[और दूसरे दिन देशके सारे पत्रोमे फोटूके साथ निकल गया बुद्धके वेशमे धूर्त ! ढाई हजारवें समारोहमे ठगनेका प्रयत्न ! अंग्रेजी 'पत्रिका'ने सम्पादकीय लिखा—'एक्सपोज्ड !' हिन्दी 'पत्रिका'का सम्पादकीय और भी भडक उठा—'तथागतका पर्दा फाश !' और प्रात ही लोगोकी भीड पणिक्करके आवास पर ऐसी लगी कि पणिक्करकी तो अतिथिके अपमानसे आत्मा ही कूच कर चली । वाहरके द्वार बन्द कर तथागतके सामने करबद्ध खडे हो जाते हैं ।]

तथा०—[मुसकराते हुए] तुम्हारा कुछ दोष नही, पणिक्कर । तथागत आश्वस्त है, तुम आश्वस्त होओ ।

आनन्द—[घबडाहटमे] सुगत, बाहरके द्वार तोडे जा रहे है, टूटने ही वाले है । बडी भीड है, जल्दी करे, अपनी ऋद्धि-सिद्धियोका

प्रयोग, नही तो जान सकटमे पड जायेगी। जल्दी करे, सुगन, यह पत्रोकी दुनिया है, पत्रकारोकी ! जल्दी !

[द्वार टूट जाते है। भीड बँगलेमे घुस चलती है। पर जब तथागत वाले कमरेमे पहुँचती है तो उसे खाली पाती है। वस पणिक्कर किंकर्त्तव्यविमूढ खडे रहते है।]

रानी दिद्दा

[श्रीनगर। काश्मीरके राजा क्षमगुप्तका दरबार। मेहराबी दरवाजोपर तोरणके नीचे भारी हंसचित्रो वाले परदे पडे हुए है। राजा मुसाहिबोके बीच बैठा हँस रहा है और मुसाहिब हर प्रकारसे उसे हँसा रहे है। चापलूसीका बाजार गर्म है।]

राजा—रुय्यक, कामिनी और कचनका नाम भला एक साथ क्यो लिया जाता है?

रुय्यक—देव, दोनो कमनीय है, इसलिए।

हिम्मक, यशोधर—[एक साथ] साधु, रुय्यक, साधु! कमनीय दोनो ही है, नच।

मठ—देव, पर मुझे यह उत्तर कुछ जँचा नही। देवकी आज्ञा हो तो दास भी कुछ निवेदन करे।

राजा—निश्चय, जरूर-जरूर। भला मूरखराज मठ क्यो न अपना अटकल लगाये! बोलो, बोलो, मठ।

मठ—देव, कामिनी और कञ्चन दोनोका नाम इसलिए एक साथ लिया जाता है कि दोनो मूल्यमे खरीदे जा सकते है।

दिद्दा—हुँ! मूर्ख!

राजा—[हँसता है] क्यो, देवि, अभद्र कहा कुछ मठने? [जोरसे हँसता है, सब हँसते है, केवल रानी और रुय्यक चुप है।]

दिद्दा—अभद्र तो है ही, देव, यह अशिष्ट विदूषक। पर मैं समझती हूँ, देव, अगर यह सचमुच कोई समस्या है तो इसे कवि ही हल कर सकेगा, रुय्यक ही, मठ विदूषक नही।

राजा—सुनी, मठ, देवीकी बात सुनी? [हँसता है, सब हँसते है।]

मठ—सुनी, देव! पर प्राणदान पाऊँ तो कुछ कहूँ। [राजा रानीकी ओर देखता है, सभासद भी कुतूहलसे देखते है। रानी दिद्दा

सिंहासनपर आसन बदल लेती हैं, उसकी भृकुटियाँ चढ़ जाती है।]

राजा—प्राणदान दो, देवि, विट और विदूषक अपने कथनमें स्वतन्त्र होते हैं। अदण्डय। अभय दो उसे।

[सब रानीकी ओर आतुर नयनों देखते हैं। मठ अपनी आँखें आधी मीचकर होठ चाटता है।]

दिद्दा—[कुछ खिझी हुई सी] देवीका सभासदोंको भय रहा कहाँ ? और दुर्विनीत मठके प्राण तो अनिर्वचनीय बोल कर भी देवकी कृपासे कभी संकटमें नही पडते।

राजा—बोलो, मठ, बोलो ! देवीका वरदहस्त तुम्हारे मस्तकपर है।

मठ—देव, कामिनी और कञ्चन दोनो खरीदे तो जा ही सकते हैं पर दोनोंमें तनिक भेद है—[तनिक रुककर] जहाँ कञ्चन खरीदा जा सकता है वहाँ वह खरीद भी सकता है। कामिनीको भी। सो दोनोंमें मात्र कामिनी ही परार्थसाधिका है।

[राजा मुसकराता है, सभासद् मुसकराते हैं, रानीके तेवर और चढ जाते हैं।]

.—पर देव ! कामिनीका अहम्—

ठ—[बात काटता हुआ] देव ! मैंने अभी अपनी बात पूरी नहीं की।

राजा—उसे छेड़ो नहीं स्यक, बोलने दो।

[स्यक सिर झुका लेता है, सभासद् मुसकराते हैं।]

मठ—[मुसकराता हुआ] देव, पर पहले स्यककी बातका ही उत्तर दूंगा—कामिनीके अहम्का। अहवादी तीन तरहके होते हैं—पहले वे जो स्वयं रहते हैं और दूसरोंको रहने देते हैं। दूसरे वे जो स्वयं रहते हैं पर दूसरोंको नहीं रहने देते, तीसरे वे जो न

स्वय रहते है न दूसरोको रहने देते है। नारी इस तीसरे प्रकार की अहवादिनी होती है।

[राजा हँसता है, सभासद् हँसते है, हँसीसे सारा भवन गूँज उठता है, केवल दिद्दा कुपित रहती है।]

राजा—देवि, मठका तर्क तीक्ष्ण है, हा-हा-हा !

सभासद्—[हँसते हुए] साधु ! साधु !

राजा—लगा, मठ, रुय्यकके एक चपत ! तेरी गोटी लाल है। हा ! हा ! हा ! [हँसता है]

मठ—यह ले, देव। [उठकर रुय्यकके चपत लगा देता है। सब हँसते है, रुय्यक भी राजाके डरसे रूखी हँसी हँसता है, रानी क्रोधसे होठ काटती है।]

हिम्मक—देव, बात तो कामिनी और कञ्चनकी खरीदारीकी हो रही थी, अब यह अहवादकी कैसे होने लगी ?

मठ—मूर्ख, हिम्मक, वीरता और बुद्धि दो चीजे है, परस्पर विरोधी। तर्कसम्मत बुद्धि होती तो तुम समझ गये होते—कञ्चनसे भी परे होनेके कारण नारीका अहम् जाग्रत होता है, इसीसे उसके घोर अहवादकी बात कही। अब अगर नारीकी खरीदारीकी बात सुनना चाहो तो उसे भी कहे।

[सब राजाकी ओर देखते है।]

राजा—हाँ, मठ, उसकी भी व्याख्या कर।

मठ—सुने देव, सदासे नारी कञ्चनसे, द्रव्यसे, खरीदी जाती रही है। अप्सराओको निष्क-शत मान मिलते थे, आम्रपालीको हज़ार सुवर्ण, वासवदत्ताको सौ सुवर्ण, वसन्तसेनाको सौ दीनार

दिद्दा—[बात काटकर] मूर्ख, वेश्याएँ ही मात्र नारी है तुम्हारी ? कुलवधुएँ और वारागनाएँ समान है ?

[राजा मुसकराता है, सब भीतर ही भीतर हँसते हैं।]

मठ—ढिठाई क्षमा करे, देवि, अभयदान दे। दासका नम्र उतना ही निवेदन है कि नारी पहले नारी है पीछे वेश्या या कुलवधू, और अपने मूलरूपमे क्रयशील है। हाँ, कुछको द्रव्यसे खरीदा जाता है, कुछ को उपायन-उपहारसे, कुछको प्रेमसे, कुछको चाटुकारी-चापलूसीसे। यदि नारी झुकती नही तो या तो स्थान नही, एकान्त नही या उसके प्रणयकी भीख माँगनेवाला नर नही।

[रानीके नथने क्रोधसे फड़कने लगते हैं, पसीना चेहरेपर छा जाता है।]

दिद्दा—देव, उपहासकी भी सीमा होती है। भाँडको सिर चढाना एक दिन अनर्थ करेगा।

राजा—शान्त हो, देवि!

[रानी आसनसे उतर बिना परिचारिकाकी सहायताके लँगड़ाती सभाभवनसे बाहर चली जाती है। राजा हँसता है, सभासद् हँसते हैं]

मठ—बड़ा अपराध बन गया, देव, इस अकिञ्चन दाससे।

राजा—श्लाघ्य है मूर्ख, तू श्लाघ्य है, मठ! ले यह कंगन।

[राजा रत्नजड़ा कंगन मठको देता है। 'कंकणवर्षी राजा क्षेमगुप्तकी जय!' से सभाभवन गूँज उठता है। राजा राज-पुरुषकी ओर देखता है, राजपुरुष कंगनोंकी थैली लिये राजाके सामने घुटने टेक देता है। राजा थैलीसे निकाल-निकाल कंगण बाँटने लगता है। 'कंकणवर्षी कश्मीरराजकी जय!' की आवाज गूँजती रहती है]

दृश्य २

[श्रीनगरके राजमहलका रनिवास। शयनागारमे रानी दिद्दा सो रही है। दीवारोपर सजीव चित्र लिखे है—काराकोरम और पामीरोसे पीर पजालकी बर्फीली चोटियो तक। एक ओर डलमे कमलोका वन अपना मकरन्द उडा रहा है दूसरी ओर ऊलरमे शिकारोके बीचसे हसोके जोडे सरक जाते है। गङ्गा-जमुनी पलँगपर रानी पडी है, जैसे आकाशसे तारिका टूट पडी हो, जैसे जूहीका निष्कलक फूल दूधिये बिस्तरपर अकेला पडा हो। दासियां भीतर भी है, बाहर भी, कुछ जग चुकी है कुछ अँगडा रही है। और तभी वैतालिकका स्वर सुन पडता है—]

वैतालिक १—जागे, देवि, जागे !

निशाकी वेणीको सँवारता निशाकर पीला हो क्षितिजसे कबका नीचे उतर गया है। वन्दी-भ्रमर कमल-काराके भीतर मुक्तिकी आशासे गुन-गुना रहे है और खण्डिताओको मान देता दिवाकर कमलिनियोके होठोको चूम रहा है।

जागे देवि, जागे !

वैतालिक २—जागे, देवि, जागें !

दरद और तुखार, पुछ और राजपुरी, लोहर और उरशा, मध्यदेश और गौड हाथ बांधे आज्ञाकरणके लिए नतमस्तक है। मुक्तापीड ललितादित्यकी विजयोकी टूटी शृखला जोडें, देवि, जोडें।

जागे, देवि, जागे !

[रानी दिद्दा आँख मलती हुई, शय्यापर उठ बैठती है। सखियां उसे फूलोके दस्ते प्रदान करती हैं, दासियाँ फूलोसे बसे जलसे उसका मुँह धुलाती हैं। दिद्दा तकियेके सहारे करवट बैठ जाती है।]

वैतालिक ३—जागे, देवि, जागे !

रात, चोर और चाँद अपने कोटरोंमे जा छिपे। दूर दक्षिणसे आया मन्द मलय तुम्हारी काजल काली अलकोंमे खेल रहा है वातायनोंमे बालारुण उनमे अपने सुनहरे तार पिरोते जा रहा है।

दिद्दा—[जम्हाई लेती हुई] आह ! कितना दिन चढ आया। मदिरे, तूने मुझे जगाया क्यों नही भला ?

मदिरा—रात देरसे सोई थी, देवि, इसीसे जगानेका साहस न हुआ।

दिद्दा—मुकुटका भार ढोना कुछ आसान नही, मदिरे, उस छातेकी तरह है जिससे धूपका निवारण कम होता है कर और कन्धोंका श्रम अधिक।

[द्वारपालिका मागधीका प्रवेश]

मागधी—देवि, मन्त्रिवर आर्य नरवाहन दर्शनके लिए द्वारपर पधारे है।

दिद्दा—उनसे मेरा प्रसाद कह, मागधी, लिवा ला।

[मागधीका प्रस्थान और मन्त्रीके साथ फिर प्रवेश]

नरवाहन—[सिर झुकाकर] अकिंचन नरवाहन अभिवादन करता है, देवि !

दिद्दा—सौजन्य फले, आर्य ! क्या समाचार है ?

नर०—देवीका तेज तपता है, शत्रु सत्ताहीन है, डामरोंके जहाँ-तहाँ उत्पात निश्चय सुन पड़ते है पर देवीका प्रताप उनको सिर उठने नहीं देता। निश्चिन्त हों, देवि।

दिद्दा—निस्सन्देह डामरोंको सर्वथा शीतल कर देना होगा, आर्य ! बुझे अंगार है वे, और एक चिनगारी भी [illegible] सकती है।

नर०—उस दिशामें भी निश्चिन्त हों, देवि। राजकर्मचारी और [illegible] सैनिक सर्वत्र राजदण्डकी स्थापनामें लगे है। पिछले आगमनोंसे जिन

ओछे जनोको सिर चढा लिया था अत्रभगवतीकी शालीनताने उन्हे यथास्थान कर दिया है।

दिद्दा—सब आर्यके नीति-बलसे सम्भव हो सका है। मन्त्रिवरकी रक्षामे राष्ट्र नई शक्ति धारण करेगा। प्रजाका रजन कर सके, आर्य आशीर्वाद दे।

नरवाहन—मगल हो देवि! शत्रुवनिताओकी माँगसे सिन्दूर पुँछ जाय! राजा कालका कारण होता है, प्रजा राजाके अनुकूल कालको बरतती है। देवी क्षमताशील है, प्रताप और विक्रमसे, विश्वास है, ललितादित्य मुक्तापीडका गौरव लाँघ जायँगी।

दिद्दा—आर्यकी सद्भावना सफल हो!

[सिर झुकाकर नरवाहन चला जाता है।]

दिद्दा—कालिन्दी, तुम्हारे चर उपस्थित है ?

कालिन्दी—उपस्थित है, देवि। आज्ञा हो तो प्रवेश करे।

दिद्दा—बुलाओ [कालिन्दी द्वारपालिकाको सकेत करती है, द्वारपालिका बाहर जाकर चरोके साथ प्रवेश करती है]

चर १—जय हो, देवि! झेलमके दोनो ओरके प्रदेश सुशासित है। प्रबल दुर्बलको नही सताता, साहसीक देवीके भयसे थर-थर काँपते है, पहाडो और जगलोके मार्ग सुरक्षित है।

[रानी दूसरे चरकी ओर आँख उठाती है।]

चर २—सीमा प्रान्तके दरदो-तुखारोमे शान्ति है। दिवगत देवके निधनने जो आगे खलबली मच गई थी देवीके तेजसे वह तिरोहित हो गई है। वक्षु तीरकी केसरकी क्यारियोमे देवीके अश्व मत्त लोटते है और उनके अयाल केसरमे लाल हो जाते है।

[तीसरा चर नारी है। उसपर रानीकी नजर पडते ही वह कुछ ऐसा सकेत करती है कि रानी इशारेसे बाकी चरो और

मक्खियोंको हटा देती है। केवल मदिरा, मागधी और कालिन्दी रह जाती हैं।]

दिद्दा—जखी, आज क्या कुछ विशेष सवाद लाई है? और तू तो इस वेशमें है कि मैं तो पहले पहचान ही न सकी।

जखी—हाँ देवि, पिछले सप्ताह मैं डामरोंके बीच चली गई थी। वहाँ विधवाके रूपमें रहनेके कारण मुझे सिरके बाल मुड़ाने पड़े थे। चरका कार्य कठिन होता है, बहुरूपिया बनना पड़ता है न, सो आज इस वेशमें हूँ।

दिद्दा—अच्छा बता तो भला, वहाँ क्या देखा सुना?

जखी—सुना देवि कि डामर और दरबारसे निकाले लोग राज्यके विरुद्ध षड्यन्त्र कर रहे हैं, कि दोनोंके बीच जो पत्र व्यवहार होता है उसमें एक विशेष छद्म-शब्दका प्रयोग होता है। पर उस शब्दको जानते भी मुझसे देवीके सामने उसे कहनेका साहस नहीं होता।

[रानी और सखियाँ बड़े कुतूहलसे उसकी बात सुनती हैं।]

दिद्दा—बोल, जखी, बोल। कह चल, क्या है वह छद्म-शब्द?

जखी—साहस नहीं होता देवि, जो अभयदान पाऊँ तो कहूँ।

दिद्दा—अरे जखी, जानती नहीं कि चर वैसे भी अवध्य होता है? फिर तू तो मेरी अर्थगामिनी भी उतनी नहीं है। बोल।

जखी—वह छद्म-शब्द है, देवि—'पंगु'।

[सहसा रानीका मुख क्रोधसे लाल हो जाता है और सखियाँ सहम जाती हैं।]

दिद्दा—[तमतमाई हुई, पर दृढ आवाजमें] हाँ, मुझे ज्ञात है वह गाली, यद्यपि गाली वह है नहीं। मैं विकलांग हूँ सही, और मेरी सौत चन्द्रलेखाका पिता फल्गुण मुझे विकलांग कहता भी था। और जो फल्गुण भी इस षड्यन्त्रमें शामिल हो तो कुछ अचरज नहीं,

पत्र-व्यवहारमे मेरा उल्लेख पगु शब्दसे होता हो। पर मैं पगु नही हूँ, और यह फल्गुण देखेगा। लोहरनरेश सिहराजकी दुहिता और हिन्दूकुश काबुल और लमगानके स्वामी भीमशाहीकी धेवती शासन करना और शासनमे शत्रुओको निर्मूल करना जानती है, यह फल्गुण देखेगा। कालिन्दी, दण्डनायकको कह कि कल सेनाके मैदानमे सैन्य-निरीक्षण होगा और उसके लिए वह मेरा विशद आदेश स्वय मुझसे आज अर्धरात्रिको ले ले।

कालिन्दी—जैसी आज्ञा, देवि। अभी आर्य दण्डनायकसे देवीका प्रसाद निवेदन करती हूँ।

[सबका प्रस्थान]

दृश्य ३

[नगाडे, तुरही और शखकी निरन्तर गूँज। पैदल और घुड़-सवार सेनाके चलनेकी आवाज। बीच-बीचमे सेनानायकोके अस्पष्ट सचालनकी आवाज। रानी दिद्दा सैन्य वेशमे मत्रियो और दण्डनायकके साथ फैले मैदानमे सेनाका निरीक्षण कर रही है। रह-रह कर उसके घोडेका हिनहिनाना, उसकी टापोकी ध्वनि।]

दण्डनायक—देवि, अभियानके लिए प्रस्तुत यही आपकी सेना है। कहे, अपने गजोको गङ्गा-जमुनाके सगमपर वारिक्रीडामे निमग्न करूँ, कहे अपने घोडोसे पामीरोको लाँघ जाऊँ। व्यूह-चक्रमे पारगत यह सेना, देवि, अन्नभवतीके सकेतके लिए उत्सुक है। सिन्धु-झेलमके सगमसे भोटोके परवर्ती प्रदेश तक समूचा जनविस्तार उनके भयसे घर-घर काँपता है। आज्ञा करें, देवि।

दिद्दा—आश्वस्त हुई, आर्य, विनय और तत्परतासे भरी आपकी सेनाका प्रदर्शन देखकर। यही हमारा विपुल बल है हमारे राष्ट्रकी सुरक्षाका साधन। इसे सन्नद्ध रखो, शीघ्र इसके अभियानकी आवश्यकता होगी।

[पासके मन्त्री सान्धिविग्रहिकपर नजर डालती हुई]

मन्त्रिवर, सुना है डामरोको उभाड़ कर फल्गुण पर्णोत्सकी दिशासे राजधानीकी ओर बढ़ा आ रहा है।

[दण्डनायक सिर झुकाकर तनिक हट जाता है]

सान्धि०—सही, देवि, हिम्मक भी फल्गुणसे मिल गया है। पर आपकी सरहदकी सेना घाटियोंकी रक्षा कर रही है, राज्य निरापद है, आशंका न करें, देवि।

दिद्दा—[मुसकराती हुई] आर्य, आपके-से सान्धिविग्रहिक और आर्य नरवाहनसे मन्त्रिप्रवरके होते, आर्य दण्डनायकसे तलवार बाजके होते आशंका कैसी? पर डामरोंका बल तोड़ राज्यको सदाके लिए निरापद करना होगा।

[तीनों मस्तक झुका लेते हैं]

सान्धि०—निश्चय, देवि! डामरोंका बल टूटकर रहेगा।

सेनाको स्कन्धावारोंमें भेज दो, आर्य दण्डनायक। उसे तीन मासका अग्रिम वेतन दो, उससे कह दो कि डामरोंका दर्प चूर्ण होते ही सैनिकोंको कर-मुक्त भूमि मिलेगी। राष्ट्री सदा राष्ट्रके शूरोंको ही मित धनका अधिकारी बनाती है। सबका पुरस्कार उनका भोग है।

['रानी दिद्दाकी जय! रानी दिद्दाकी जय!' से दिशाएँ गूँज उठती हैं। मन्त्रियोंके साथ रानी महलोंकी ओर लौट पड़ती है।]

दृश्य ४

[दिद्दाका मन्त्रागार। रानी सखियोसे घिरी युद्धकी खबरके लिए उत्सुक बैठी है। द्वारपालिकाका सहसा प्रवेश]

द्वार०—देवि, आर्य दण्डनायक सेवामे उपस्थित है, दर्शन चाहते है।

दिद्दा—आर्य दण्डनायक! युद्धस्थलसे अलग राजद्वारपर! उनका यहाँ क्या काम? अच्छा, पवराओ उन्हे!

[दण्डनायकका प्रवेश]

दिद्दा—आर्य, यहाँ कैसे, जब डामरोका विद्रोह नगर-द्वारपर चोटे कर रहा है?

दण्ड०—अन्तिम दर्शनके लिए आया हूँ, देवि, प्रसादके लिए। डामरोकी कुमक लिये हिम्मक प्रादेशिक अधिरोह लाँघ आया है और शत्रुकी हरावल उदयराजके हाथमे है। मै यह कहने आया, देवि, कि सम्भव है शत्रुकी चोटसे अपनी रक्षाकी प्राचीरे टूट जाँय, पर अत्रभवती उससे आशङ्कित न हो। एकागोकी रक्षक सेना राज-परिवारकी रक्षा करेगी जब तक कि मै पामीरघाटीकी ओरसे शत्रुपर प्रत्याक्रमण न करूँ। मै राजकुमारोको अपनी रक्षामे ले निकल जानेके लिए आया हूँ।

दिद्दा—आर्य, नाहियोकी धेवती भयभीत नही। जहाँ तक हो सके कर्तव्यका पालन करे। दिद्दा अपना कर्तव्य निश्चित कर चुकी है। हिम्मक और उदयराज उसके लोहेकी चमक देखेगे। राजकुमारोकी व्यवस्था कर चुकी हूँ। वे रनिवासमे नही है। दूरके विविध मठोमे है। राजधानीसे बाहर।

दण्ड०—[जाता हुआ] चला, देवि, राजपरिवारका मगल हो।

[प्रस्थान]

दिद्दा—जाओ, वीरवर ! कश्मीर लाज-रक्षक, जाओ। [मागधीसे] अरी देख, मागन्धी, सैन्यवेश ला।

मागन्धी, कालिन्दी आदि—[एक साथ] ऐ, देवी क्या सैनिक वेश धारण करेंगी ?

दिद्दा—शीघ्रता कर, मागन्धी ! अब राजप्रासादमें बैठे रहनेका समय नहीं। लोहरोंकी सन्तान कुसमयमें अपना कर्तव्य जानती है। शाहियोंकी धेवती शत्रुके आक्रमणपर परकोटेके पीछे नहीं बैठती, उसने हिन्दूकुशकी बुर्जियाँ देखी हैं। कुम्भाकी लहरोंको तैर कर लाँघा है। जल्दी कर।

[मागन्धीका प्रस्थान और रानीके सैनिक वेशके साथ फिर प्रवेश, सहसा द्वारपालिकाको हटाते हुए मन्त्री नरवाहनका प्रवेश।]

नर०—राज्योचित उपचारकी रक्षा न करनेका अपराधी हूं, देवि, पर क्षमा करें, गद्गद मार्ग उपचारोंका उत्तर है। सिंहद्वार टूट चुका है। मित्र एकांगोंके पैर उखड़ते ही जाते हैं। [illegible], क्षेमस्वामीका मन्दिर अब भी सुरक्षित है। [illegible] लेंगी, सम्भवतः शत्रुओंकी सेना [illegible] आ पहुंची।

दिद्दा—[सैनिक वेशमें सजती हुई] आर्य अपना [illegible]। सिंहराजकी बेटी संकटमें मन्दिरमें और महलमें आराम नहीं लेगी। उसका स्थान सिंहद्वारकी [illegible] है। [illegible], मागन्धी। अश्व तैयार है ?

माग०—तैयार-तैयार, देवि !

[प्रस्थान]

नर०—सावधान, देवि, कश्मीर राजलक्ष्मी इस नगरसे [illegible] हाथ नहीं जाती !

दिद्दा—[घोडेपर चढनेकी आवाज; दूरसे दृढ आवाजमे] यह रणचण्डी है, आर्य, जो शुम्भ-निशुम्भके विरुद्ध अभियान कर रही है। निःशङ्क हो, दिद्दा शक्ति है और शक्ति दर्पिल बनी रहती है, जबतक टूट नही जाती। जबतक अङ्गार ठण्डा नही हो जाता उसे कोई छू नही पाता। [शङ्ख फूकती सिंहद्वारकी ओर प्रस्थान]

नर०—जाओ, रणचण्डी, जाओ। जानता हूँ, तुम्हारे लिए तीसरा मार्ग नही। क्षेमस्वामी तुम्हारी रक्षा करे ! [सिंहद्वारकी ओर प्रस्थान करता शङ्ख फूँकता है।]

[शङ्खध्वनि सुनते ही महलोकी रक्षक सेना रानीके पीछे दौड पडती है।]

[युद्धका कोलाहल, वीरोकी हुङ्कार, मरते हुओकी पुकार, चमकती मशालोकी रोशनीमे घोडोकी टापोकी आवाज, सहसा दूसरी ओरसे शत्रुपर हमला। देखते ही देखते शत्रुका पलायन और नवागत हमलावर सेनाका जयघोष, 'रानी दिद्दाकी जय !' 'लोहरनन्दिनीकी जय !' 'शक्तिरूपा दिद्दाकी जय !']

दृश्य ५

[कश्मीरी राजमहलका सभाभवन। रानी सिंहासनासीन है। मन्त्रिवर नरवाहन, सान्धिविग्रहिक, दण्डनायक आदि यथास्थान बैठे हैं। सामने शृङ्खलाबद्ध हिम्मक खडा है, सैनिकोसे घिरा।]

दिद्दा—उदयराज निकल भागा, हिम्मक, पर तू कालके गाल पडा।

हिम्मक—नही रानी, राजकुमार निकल गये। और कालका गाल तो प्रत्येक वीरका अभिप्रेत है।

दिद्दा—हिम्मक, क्रोधकी प्रतिक्रियामे तुम्हारा न्याय न करूँगी। तुम्हे उचित दण्ड आर्य नरवाहन देगे। पर एक बात पूछती हूँ, हिम्मक।

हिम्मक—पूछो, रानी।

दिद्दा—गाली देते हो न मुझे, पर-पतिका होनेकी ? जो राजासन कुमार्ग-गामी पुरुषके सम्बन्धसे अशुद्ध नही हो पाता वही कुमार्गगामिनी नारीके सम्पर्कसे कैसे दूषित हो जाता है, भला कहो तो ?

हिम्मक—प्रगल्भ हो दिद्दा, जानता हूँ। पर यह भी जानता हूँ कि प्राण रहते नारीका स्वत्व कश्मीरके सिंहासनपर न मानूँगा। और जानती हो, इस मतका मै अकेला नही हूँ।

दिद्दा—जानती हूँ, साथ ही यह भी जानती हूँ शक्तिके साथ ही स्वत्वकी अधिकारिणी रह सकूँगी। पर हिम्मक, जीते-जी मेरे हाथसे कोई शक्ति न छीन सकेगा, न सिंहासन ही। और न शक्ति और सिंहासनकी परिधिसे उस समूचे राज-सुखका भोग करूँगी जो पुरुषके लिए शास्त्रसम्मत है। नारी होने मात्रसे न उससे वञ्चित रहूँगी, न डरूँगी।

[नरवाहनसे]

आर्य, न्याय करे इस राजद्रोही हिम्मकका। मै चली रनिवासकी समस्याओको सोचने। विनयस्थितिकी स्थापना मेरा पहला कार्य होगा। पामीरोकी ओरसे दण्डनायकके कुमकके साथ आनेकी सूचना मिली है। स्वागतका प्रबन्ध करें।

नर०—जो आज्ञा, देवि।

[दिद्दा उठती है, सभी उठ खडे होते हैं। दिद्दाका सखियो सहित प्रस्थान]

वैतालिक—इधर, इधर पधारे, देवि।

दृश्य ६

[रानी दिद्दाका शयनागार। दिद्दा सुनहरे पलगपर लेटी है, मागंधी पास बैठी स्वामिनीसे सखी भावसे बात कर रही है। दिद्दा कुछ उदासीन, चिन्तित-सी है।]

मागधी—कारण क्या है, देवि, इस चिन्ताका ? ससारकी कोई वस्तु देवीको अलभ्य नही, कोई व्यक्ति नही जिसपर देवीकी दृष्टि पडे और वह अकिंचन न हो जाय। फिर इस उच्चाटनका अर्थ क्या है, स्वामिनि ?

दिद्दा—कई दिनोंसे तुझसे एक बात पूछती रही हूँ, मागधी।

मागधी—पूछें न, स्वामिनि।

दिद्दा—वह कौन था, मागधी, मन्त्रिवर नरवाहनके भवनमे उस दिन जब हम उनके आमन्त्रणपर वहाँ गये थे, वह आकर्षक तरुण ?

मागधी—वह जो आर्यके दाहिने बैठा था ?

दिद्दा—नही जानती, मागधी, कि कोई बाये भी बैठा था। मैंने तो बस एकको देखा था, फिर किसीको नही देखा, आर्य तकको नही।

मागधी—और वही आँखोंमे गड गया था।

दिद्दा—व्याख्या न कर मागधी, बता तू जानती है उसे कौन है वह ?

मागधी—स्वच्छन्द बहती हवाको भला वासन्ती लताकी झूमती टहनी क्यो पूछे, देवि, कि हवा यह कौन है ? प्रवह, कि सवह, कि प्रतिवह ? क्या इतना पर्याप्त नही है कि वह मनको अपनी दोलामे डालकर झुला देती है ?

दिद्दा—सही, मागन्धी, मनको अपनी डोलती दोलामे डालकर झुला देने-वाली हवाकी जानकारी उससे आगे कुछ विशेष अर्थ नहीं रखती, परसती हवाकी परससे ही जान लेती हूँ कि यह प्रखर पामीरी है

या दक्खिनसे आनेवाली मलयानिल। वस्तुकी जानकारी भोगके सुखको दुगनी कर देती है।

मागधी—खस है वह, रानी, तुग खस, पर्णोत्सके गाँवका खस, जिसे आर्यने पत्रवाहकका कार्य सौंप रखा है। अत्यन्त आकर्षक है न, देवि, वह खस, अत्यन्त काम्य ?

दिद्दा—सही मागधी, पर भला तूने यह जाना क्योकर ? क्या तेरा अन्तर भी तो दग्ध नही हो गया ?

मागधी—नही, देवि, मेरा अन्तर तो दग्ध नही हुआ, पर मैंने स्वामिनीकी आँखे निश्चय देखी थी और उनके मौन सचालनसे जाना कि इस ज्ञानकी आवश्यकता होगी एक दिन, और वस सग्रह कर लिया।

दिद्दा—तू बडी चतुर है, मागधी। पर यह तो बता, आर्य भला इस पत्र-वाहकको राजकीय पत्रोके साथ मेरे यहाँ क्यो नही भेजते ?

मागधी—शायद इसलिए कि कही इससे राजकीय पत्र और पत्रवाहक दोनो न खो जायँ और दूसरे पत्रवाहककी आवश्यकता पडे!

दिद्दा—ढीठ! कितना ज़बान लडाती है। [दोनो हँसती है।]

मागधी—खस आकर्षक है, देवि!

दिद्दा—मैंने तो, जब तक वहाँ रही, उससे आँख ही नही हटाई, आर्यकी एक बात नही सुनी।

मागधी—तभी तो आर्यने अपनी कही हुई बातोको दुबारा पत्रारूढ कर स्वामिनीके पास भेजा।

दिद्दा—तभी। क्या सोचा होगा आर्यने, मागधी ?

मागधी—क्या सोचा होगा आर्यने रुय्यकके सम्बन्धमे, रुक्क और दण्ड-नायकके सम्बन्धमे, पिंगल और कठकके सम्बन्धमे, स्वामिनि ?

दिद्दा—अच्छा बन्द कर अपनी गन्दी जबान। पर देख यह खस जो है—

मागधी—नही, स्वामिनि। पर देवी यह धमशास्त्रकी परिधि प्रेमके क्षेत्रमे

कबसे खीचने लग गई। 'प्रणय निर्वर्ण है, मागधी, नि शक !' क्या स्वामिनीने कभी नही कहा था ?

दिद्दा—[थकी-सी अँगडाती हुई] हाँ, कहा तो था, मागधी ! है ही प्रणय निर्वर्ण, नि शक ।

मागधी—फिर यह शका कैसी, रानी ? चन्द्रकी मरीचियोको भेदपूर्वक सेती हो, या गधवहके पख चढी सुरभिको चुनकर भोगती हो ? मकरन्दका सौरभ तो सर्वजनीन है, देवि, जैसे रानी सर्वजनीन है।

दिद्दा—साधु, मागधी, साधु ! मकरन्दका सौरभ सर्वजनीन है, जैसे रानी सर्वजनीन है ।

मागधी—और सर्वजनीन रानीके लिए कुछ भी अग्राह्य नही, कुछ भी अभोग्य नही । ब्राह्मणसे खस तक सभी उसके उपास्य है, सभीकी वह उपास्य है, वह समूची प्रजाका रजन करती है—राजा प्रकृतिरञ्जनात् ।

दिद्दा—अरी तू तो बडी पण्डिता हो गयी, मागधी—श्लोकपर श्लोक गढने लगी, महाभारत-कालिदासको मात कर दिया ! कही स्मृतिकार न बन जाय !

मागधी—स्मृतिकार अगर बनी तो मेरी स्मृति मनु और याज्ञवल्क्यकी स्मृतियोसे सर्वथा भिन्न होगी । उसके आचार-नियम उनसे भिन्न होगे, सर्वथा कश्मीरके । पर मेरी श्रुति तो तुम हो, रानी । मेरा बस इतना प्रयास होगा कि मेरी स्मृतिकी आचार-मर्यादा मेरी श्रुतिके प्रमाणसे भिन्न न हो !

दिद्दा—[उठती हुई] अच्छा, खडी रह, चुडैल !

[मागधी भागती है फिर हाथ बांधे लौट आती है]

मागधी—क्षमा, स्वामिनि, क्षमा !

दिद्दा—आ, मागधी, ले लिख ले अपनी श्रुतिके अनुसार स्मृति, नये

आचारोसे मुखरित। लिख—रानी निर्वर्ण होती है, वर्णोंसे परे, जिससे न कोई वर्ण उसे दूषित करता है न उससे दूषित होता है।

मागन्धी—कि खस उसके लिए उतना ही गाह्य है जितना ब्राह्मण।

दिद्दा—प्रतिलोभका निषेध उसके लिए नही है, कि सामाजिक आचारकी साधारण सत्ता उसे नही बाँधती, कि महाभूत समाधियोसे उसका कलेवर बना है, कि वह वासनाओको भोगकर उन्हे जीर्ण कर देती है, उनमे बंधती नही।

मागन्धी—ठहरो, ठहरो, देवि, रोको तनिक अपनी यह प्रवहमान वाक्यावलि! जरा आचार्य पुरोहितको बुला लूँ।

दिद्दा—मूर्ख! यह दिद्दाशास्त्रका पहला अध्याय है, मनु-याज्ञवल्क्यमे नही लिखा है जिसे पुरोहित कण्ठ कर ले।

मागन्धी—हाँ तो पत्रवाहककी दूती मैं बनूँ, रानी ?

दिद्दा—बन, मागधी, जैसे स्यावाश्वकी रजनी बनी थी, जैसे सिनीवालीका स्यावाश्व बना था। कह उससे कि रानी वर्णकी खाई लाँघ गई है, कि तुझे ऊँचे देखनेका, चन्द्रको निहारनेका, उसकी चाँदनीमें नहानेका अधिकार है, कि चाँदनी डलके कमलवनपर भी उसी वैभवसे पसरती है जैसे गढेकी काईपर।

मागधी—अच्छा, स्यामिनि, चली तुम्हारा दौत्य सपन्न करने।

[जाती है]

दिद्दा—[स्वगत] कितनी ऊर्जस्वित प्रशस्त उसकी छाती थी, कितनी शिराव्यजित उसकी भुजाएँ थी, कितना मादक उसका स्पर्श होगा, उन कमनीय खसका!

दृश्य ७

[श्रीनगरका राजमहल। रानीका मन्त्रागार। दिद्दा तुङ्गके दोनो कन्धे सामनेसे पकडे खडी है। तुङ्ग अब कश्मीरका दण्ड-नायक है।]

दिद्दा—दण्डनायक!

तुङ्ग—निहाल हो गया, देवि, पर तुग कहो।

दिद्दा—तुम अब कश्मीरके दण्डनायक हो, सेनाका भार धारण करते हो। राजपुरीके मैदानमे असाधारण शौर्यका प्रदर्शन कर चुके हो, मेरी विज्ञप्ति और अपने पराक्रमसे तुमने यह पद पाया है। कौन तुम्हारी उपेक्षा कर सकता है? तुम्हारी वीरताका अपमान भला कौन करेगा?

तुङ्ग—वीरताका मान, रानी, ललनाके सामने नतमस्तक होनेमे है। शौर्य-से लालित्य बडा है। मैं तो वैसे भी तुम्हारा अकिञ्चन दास हूँ। तुम्हारे प्रसादसे मेरे भाग्यका उदय हुआ है। ससारके लिए चाहे दण्डनायक होऊँ, तुम्हारे लिए, देवि, मात्र तुग हूँ। और कामना है कि जीवन भर बस तुग बना रहूँ।

तुम जितने तुग हो, मेरे राजा, उतनी ही मै दिद्दा हूँ और तुम्हारे सामने केवल दिद्दा हूँ। न स्वत्वका कोई लोभ है, न शालीनता-की कोई बाधा, बस नारी मात्र हूँ, मूल नारी मात्र, जैसे तुम पुरुष हो, मूल पुरुष मात्र।

तुङ्ग—नही जानता, देवि, मै क्या हूँ। जैसे स्वप्न देखकर जागा और स्वप्न सच हो गया! विश्वास नही होता पर ये कमनीय भुजलताएँ साक्षी है कि तुम मेरी हो, और मै सन्तुष्ट हूँ। कोई कामना, कोई याचना अब शेष नही रह गई।

दिद्दा—जाओ, तुग पुछकी घाटी तुम्हे पुकार रही है। जब तक उदयराज जीवित है, मेरा सिहासन और तुम्हारा प्रणय निरापद न होगा। एक बार मेरे मायकेके तेजस्वी लोहर भी जान ले कि दिद्दाका प्रसादलब्ध खस उसकी सनकका परिचायक नही अपने अधिकार से वीरवर है। जाओ, दण्डनायक तुग, जाओ। जयश्री तुम्हारे इस सरपेचकी छायामे अभिराम उतरे!

[तुङ्गका सरपेंच चूम लेती है।]

तुङ्ग—[जाता हुआ] न मै राजलक्ष्मी जानता हूँ, देवि, न शौर्यकी शालीनता। जानता हूँ मात्र दिद्दाकी सुरभित सास जिससे मेरे नथने भरे है, और रोम जो उसके स्पर्शसे पुलकित है। महत्त्वाकाक्षा राजलक्ष्मीको सरपेचकी छायामे उतारनेकी नही, उस मुसकानकी चांदनीमे नहानेकी है जो मेरे लौटनेपर मेरी एकान्तकी सखी मेरे स्वागत पथमे बिखेर देगी। विदा, देवि सप्ताह भरके लिए विदा!

[तुङ्ग चला जाता है। बाहर घोडेकी टापोकी आवाज होती है। मागन्धी तुङ्गके जानेकी आहट पाकर जो रानीके पास लौटती है तो देखती है कि कठोरहृदय दिद्दाकी आँखोमे आँसू भरे हैं। मागन्धी चुपचाप लौट जाती है और दिद्दा महलकी खिडकीसे तबतक प्राङ्गणकी प्राचीरोकी ओर देखती रहती है जबतक तुङ्गका ऊँचा मस्तक उसकी ओट नही हो जाता और तब उसकी आंखोके आँसू उसके भरे श्वेत अरुणाभ कपोलोपर ढुलक पडते है]

दृश्य ८

[कई वर्ष बाद। दिद्दा मरण-शय्यापर पडी है। उसकी सखियाँ शय्यागारके बाहर निरन्तर अपने बहते आँसू पोछती जा रही हैं। और बाहर महलके आँगनमे सामन्त और मन्त्री दु ख और सुखकी मिश्रित भावनाओंने एक दूसरेको हेर रहे हैं। एक ओर दिद्दाके भाई लोहरराजका पुत्र सग्रामराज शान्त खडा है, उस सवादकी प्रतीक्षामे जो एक साथ उसे दु खी और सुखी करनेवाला है। दिद्दाके प्रसादका भागी होनेसे वह उसके प्रति अनुरक्त हुआ है, उसके मरणसे दु खी होगा, पर उसकी मृत्युमे उसका भविष्य कश्मीरके आकाशपर जो छा जानेवाला है वह उसके सुखका भी कारण है। दिद्दाकी शय्याके पास केवल तुङ्ग है। उसके सुपुष्ट कन्धे नगे हैं, और उसके काले कुन्तल उन कन्धोपर हिल रहे हैं। पलकें उसकी आँसुओसे बोझिल हैं। घुटनोके बल बैठा है।]

दिद्दा—[कठिनाईसे आखें खोलती हुई] आह ! कहाँ हूँ ?

तुङ्ग—यहाँ, देवि, अपने शयनागारमे, मेरे सामने। [तुङ्गको देखती है]

दिद्दा—तुङ्ग, अब देखा नही जाता, आँखे पथरा चली है, शक्ति क्षीण हो चली है।

तुङ्ग—आधी शताब्दी तक इन आँखोके तेवरसे कश्मीरका शासन किया है, बडे-बडे पुरुषसिंह इनका तेज न सम्भाल सकनेके कारण मूर्छित हो गये हैं। अब इन्हें देखना ही क्या है, देवि ? केवल यह तुङ्ग अन्धा हो जायगा जिसके मार्गका प्रकाश ये रही हैं। [तुङ्गकी आवाज भर्रा जाती है]

दिद्दा—[सहसा भारी पलकोसे झपी आँखे प्रयाससे सविस्तर खोलती हुई—] तुग, साहस करो। नारीका साहस तुमने जीवन भर देखा है। अब उसकी मृत्युके समय साहस न खोओ। दिद्दाने यदि कभी घृणा की है तो केवल दुर्वलतासे। कायर उसकी छाया नही छू सका है, दर्प उसके तेवरमे सदा अँगडाता रहा है। मनमे दुर्वलता न लाओ। कश्मीरका यह मण्डल साम्राज्यकी परिधि तक फैला तुम्हारे लिए तुम्हारे ही खड्ग द्वारा अर्जित कर दिया है, इस पराक्रमसे जीती हुई अनमोल धराको भोगो, केसरको नई फूटती कोपले तुम्हारे चरणके नखोको रग दे।

तुङ्ग—कश्मीर मडलका वैभव, दरदो और तुखारोका आत्मसमर्पण, राजपुरी और पुछकी विजय, भोटो और लदाखियेका आज्ञाकरण किस अर्थके, जो उस ऐश्वर्यकी रानी ही न रही? तुगका वैभव उसकी आकाक्षाके साथ ही, तुम्हारे साथ ही, तिरोहित हो चला। अब जीनेकी साध नही, सखि, अब जो मनमें है उसे काश तुम्हारी अनुमतिसे सम्पन्न कर पाता।

दिद्दा—वह नही कर पाओगे, तुम। जिओ और साधसे जिओ। और जानो कि सदाचार और व्यसन एक ही पौधकी दो टहनी है, मनुष्य ही दोनोका साधक है, मृत्यु उन दोनोका विराग है।

तुङ्ग—कुछ कहोगी, रानी?

दिद्दा—कुछ नही, राजा, सिवा इसके कि सुखसे मर रही हूँ। दिलका कोई अरमान बाकी नही, कोई कामना शेष नही जो लिये जाती हूँ। जीवनको जीवनकी तरह भोगा है, निडर होकर सुकर्म और कुकर्म दोनो किये है, और भयसे विरहित जा भी रही हूँ। और अब तुग मेरा सिर तनिक उठा कर अपनी उस ऊर्जस्वित छातीपर रख लो जिसके रोम-रोमने मुझे सदा अपनी ओर खीचा है।

[तुङ्ग रानीका मस्तक छातीसे लगा लेता है। उसकी आंखोसे आँसुओकी धारा निरन्तर वह रही है।]

दिद्दा—तुङ्ग!

तुङ्ग—[भर्रायी आवाजमे] दिद्दा!

[वह आखिरी आवाज है, उसका नाम, जो उसके कानमे पडती है, और दिद्दा दम तोड देती है।]

गोपा

दृश्य १

[रोहिणीका तट । तेजीसे आता हुआ सवार घोडेकी रास खींच घोडा रोकता है । तीन लडकियां देवदहके हरे लहराते धानके खेतोसे लौट राजमार्गपर जा रही हैं । सहसा घोडेके पास आ-जानेसे डरकर आपसमे चिपट जाती हैं ।]

सवार—[घोडा रोकता हुआ] क्षमा, देवियो, क्षमा ! उद्धत अश्वको क्षण भरमे सम्हाल लूंगा । आश्वस्त हो । असयत वेगके लिए लज्जित हूं । वल्गा टूट गई थी, जिससे इसे सम्हालना कठिन हो गया । आश्वस्त हो !

[तीनो एक-दूसरेसे अलग होती सवारको देखती हैं, बोलतीं नहीं ।]

सवार—अश्वके आवेगमे अभिवादन भूल गया, क्षमा करेंगी । अभिवादन ! शाक्य सिद्धार्थ गौतम अभिवादन करता है ।

[तीनो नाम सुन चकित हो सुन्दर तरुणको देखती रह जाती हैं । परस्पर देखने लगती हैं ।]

एक कुमारी—स्वागत, शाक्यकुमार, स्वागत ! शाक्य सिद्धार्थ गौतमका देवदहमे स्वागत !

सिद्धार्थ—[घोडेसे उतरता हुआ] अच्छा, देवदहकी है देवियाँ । यशस्वी कोलियोकी कीर्ति ही इस मात्रामे कांतिमती हो सकती है । किस कुलकी है, देवि, भला ?

वही—हां, हम तीनो देवदहकी ही है । यह है महाबलकी कन्या अनुराधा, यह दण्डपाणिकी गोपा, और मैं हूं धीरोदनकी स्रग्धरा । जाना ?

सिद्धार्थ—जाना, शुभे, आप धौरोदनकी स्रग्धरा हैं, यह दण्डपाणिकी गोपा, मेरी मातुल कन्या, और यह महाबलकी अनुराधा।

अनुराधा—[गोपासे धीरे-धीरे] देख, देख ले, गोपे, अपने बन्धुको। अभी उस दिन बात आई थी।

स्रग्धरा—दूरसे आ रहे हैं, कुमार गौतम ?

सिद्धार्थ—दूरसे आ रहा हूँ, देवि, अन्नकूटसे। वहाँ गायोका मेला था। तनिक देर हो गई।

गोपा—[सकुचाती हुई अनुराधासे] राधे, पूछना इनसे, सन्ध्या हो आई, रात देवदह न रुक जायँगे ?

अनु०—कुमार

सिद्धार्थ—सुन लिया, देवि, कल्याणीने जो पूछा सुन लिया। [गोपा और भी सिकुड जाती है] [गोपासे] नही देवि, मुझे जाना ही होगा, अविलम्ब। सुना है, कोलियो और शाक्योमे रोहिणीके जलके लिए विवाद छिड गया है। एक बार जल बाँटा था, मेरा बाँटना दोनोको अभिमत है। यदि समयसे न पहुँचा तो न जाने क्या कर बैठे। आमन्त्रणके लिए आभार!

गोपा—[घबडाई-सी] इतनी जल्दी ? रोहिणी पार करते ही अँधेरा हो जायगा। [अपनी बातसे ही लजा जाती है]

स्रग्धरा, अनु० [एक साथ]—रुक जाइए न! सान्ध्य गगन रक्तपीत हो गया, अब प्रकाश डूबने क्या देर लगती है ? कपिलवस्तुका मार्ग पहाडी है।

सिद्धार्थ—[गोपाकी ओर देखता हुआ] रोहिणी पार करने क्या देर लगती है, कल्याणि, जब उसका घाट जाना है ? और विश्वास करे, यह मेरा असयत तुरङ्ग पलभरमे रोहिणी पार कर जायगा। फिर चाहे सान्ध्य गगन रक्तपीत हो जाय, प्रकाश जल्दी डूबना

नही। मार्ग पहाडी निश्चय है, पर जाना हुआ है, मेरे अश्वका परिचित है। चलो, देवियो, अभिवादन! मातुल दण्डपाणिसे मेरा नमन कहना, कल्याणि गोपे।

[तीनो सिर झुका लेती है। घोडा एड लगाते ही बढता है। रानें पार्श्वपर कस जाती हैं, घोडा जैसे हाथ भर धरासे ऊपर उठ जाता है।]

सिद्धार्थ—[दूरसे] अलभ्य लाभ हो, देवि! आकाशके तारे धरापर उतर आये!

स्रग्धरा—यह तेरे लिए है, गोपे!

गोपा—अरी चल! मेरे लिए है! अभी तो सटी जाती थी, और अब 'यह तेरे लिए है!'

अनु०—और नही क्या, गोपे? पिताने क्या कहा था?—तेजस्वी, करुणाकर, कान्त! आज जाना, उनका कहना कितना सही था!

स्रग्धरा—कितना सही था उनका कहना, सच!

गोपा—पर यह शाक्य-कोलियोके प्रतिदिनके विवाद! जैसे इन्हे कुछ और करना ही न हो। अरे जलकी धारा भी किसीकी होती है, मलयका झोका भी कही बँधकर रहता है?

स्रग्धरा—नही गोपे, न तो जलकी अविरल धारा ही किसीकी होकर रहती है, न मलयका झोका ही बँधकर रहता है, और न कोलिय बालाका अल्हड यौवन ही प्रतिबन्ध मानता है!

गोपा—अच्छा, बस कर सम्हाल अपनी प्रगल्भता।

स्रग्धरा—बिंध गई, रानी!

गोपा—बिंध गई तू, मै तो जैसी-की-तैसी हूँ।

स्रग्धरा—अरे बिंध तो गई वह जो सहसा चुप हो गई है—अनुराधा!

अनु०—[चौंककर] अरे नही। जाना, मै क्या सोच रही थी?—कि

यही है जिसे माया नही व्यापती ? माया न व्यापे उमे जो कुरूप हो, जिसका अन्तर नीरस हो। कुमार तो कितना रम्य, कितना सरस, कितना शिष्ट है ! गोपे, ऐसा तरुण साथ हो तो वरुणकी तुला कांप जाय !

[प्रस्थान]

दृश्य—२

[दण्डपाणि कोलियका प्रासाद। उसकी पत्नी रोहिणी परिचारिकाओसे घिरी कूटे हुए धानको कूत रही है। गोपा सखियों सहित आती और चली जाती है। रोहिणी धीरे-धीरे प्रासादसे निकल उसकी अमराइयोमे जाती है जहां झूला पडा है, खाली, क्योकि झूलना खत्म हो चुका है।]

रोहिणी—[ऊँची आवाजमे] गोपा !

[कोई उत्तर नही मिलता]

रोहिणी—अरी धरा ! रावा !

[उत्तर नही]

रोहिणी—कहाँ जा बैठी तीनो ? अजिरा ! ओ अजिरा !

अजिरा—आई, स्वामिनि ! [आती है]

रोहिणी—ये किधर भटक गई, तीनो ? जरा देख तो ?

अजिरा—अभी तो यही थी, इन कदली-वाडोके पीछे। गोपाका प्रसाधन हो रहा था, मै उधर भटक पडी थी। अभी देखती हूँ।

रोहिणी—हाँ, देख तो तनिक गोपाको।

अजिरा—गोपा तो यह रही, स्वामिनि।

[गोपा आती है। वासन्ती शृंगार किये। पीछे दोनो सखियाँ हैं।]

गोपा—आ गई, अम्ब, बुलाया मुझे ?

रोहिणी—हाँ, जाते, देख, तनिक इधर आ, पास बैठ जा।

[तीनो बैठ जाती हैं, शाद्वल भूमिपर, कदलियोकी झुरमुटसे बाहर।]

रोहिणी—गोपा, यह चल नही सकता।

गोपा—क्या नही चल सकता, अम्ब ?

रोहिणी—यही, सिद्धार्थसे सबन्ध।

स्रग्धरा—क्यो, अम्ब, चल क्यो नही सकता ?

अनु०—कुमार गौतम-सा सुयोग्य शाक्योमे, कोलियोमे, ऐक्ष्वाकुओमे दूसरा है कौन, अम्ब, जो नही चलेगा ? गोपाका जी न तोडें, अम्ब।

रोहिणी—योग्य-अयोग्यकी बात नही, राधे। वैसे तो कुमार आकाश-कुसुम है। आभिजात्यमे, शक्तिमें, सौन्दर्यमें, शीलमे अनुपम—मायाका ही तनय है न। जानती नही क्या ? देखा नही बहुत दिनोंमे, पर सुना तो सब कुछ है। पर—

स्रग्धरा—फिर क्या, अम्ब ?

रोहिणी—देख धरा। सुना है, विरक्त है। कपिलनगरके पूर्वद्वारपर पुष्करिणी है, उसके तीर जामुनका वृक्ष है। बस उसीके नीचे बैठा कुछ गुना करता है। और कालदेवलकी वाणी क्या किसीसे नही सुनी ?

अनु०—क्या, अम्ब ?

रोहिणी—कालदेवलने वाणी कही थी—प्रजापतीसे मैंने सुना था, फिर गोपाके पिताने भी कही—यदि ससारमे टिक सका तो चक्रवर्ती, न टिका तो परिव्राजक। कहो, कैसे करूँ ?

स्रग्धरा—पर कुमार तो ससारसे विरक्त नही। सुना है, ऋत्वनुकूल

विविध प्रासादोमे रमण करते है, आखेट और धनु-व्यायाम करते है। अभी उसी दिन देखा था—विरक्तिका एक लक्षण न था तन-पर, न वाणीमे, न चेष्टामे।

अनु०—और तीनोको पैने नयनो घायल करते गये।

स्रग्धरा—तुझे ही किया होगा, राधे, घायल, चुप रह।

अनु०—मैं तो कहती हूँ, अम्ब, कुमारको छोड दो देवदहमे घडी भर, और देवदहके प्रासाद रिक्त न हो जायें तो कहो। जिधर-जिधर कुमार जायेंगे उधर-उधर कोलिय कन्याओका परिवार चल पडेगा।

स्रग्धरा—नही, अम्ब, कुमारकी दृष्टि एकाग्र थी, गोपापर लगी। और जो वह दृष्टि एक वार देख लेता, वह ललचाई, मयत पर अनुरक्त, वार-वार लौटती दृष्टि, उसे फिर प्रव्रज्याका भय नही रहता।

अनु०—अम्ब, शका न करो। सौंपो गोपा कुमारको, और मैं कहती हूँ, गोपाके रूप-वैभवसे स्वय प्रव्रज्याको काठ मार जायगा, कुमार तो प्रासादसे वाहर न निकलेगे।

रोहिणी—गोपा!

गोपा—अम्ब!

रोहिणी—वोल, कुछ तू भी कह न।

गोपा—क्या वोलूं, अम्ब, क्या कहूँ?

रोहिणी—तूने भी तो प्रव्रज्याकी वात तातसे सुनी है?

गोपा—प्रव्रज्या क्या जीवनसे परे है, अम्ब? क्या गार्हस्थ्यकी परिणति ही प्रव्रज्या नही है? उससे फिर भय क्या?

रोहिणी—भय प्रकृत प्रव्रज्यासे नही, जाते, अकाल प्रव्रज्यासे है।

गोपा—फिर, सुनो, माँ, परागका एक कण समूची वनस्थलीको कुसुमभारसे भर देता है, एक साँसमे उनचासो पवनोका वेग समाया रहता है, सयोगका एक क्षण प्रव्रज्याके कल्पको लाँघ जाता है। मोह प्रबल है, अम्ब, अनुराग फलता है।

रोहिणी—अनुराग फले, गोपा! तातका संदेह-निवारण करूँगी। तातके भयको जीत सकी तो कपिलवस्तु ब्राह्मण भेजूँगी। मान लेगे तात, जाते, तुम्हारी कामना। जाओ, निश्चिन्त हो।

[तीनो जाती हैं—गोपा शान्त गभीर क्लान्त, सखियाँ किलकती, एक दूसरीसे चिपटती, गोपाको चूमती-भेंटती।]

रोहिणी [अकेली, अपने आप]—फले तुम्हारा मोह, गोपा! तुम्हारे रूपके सपुट कमलमे कुमारका वैराग्य भ्रमर बनकर मुँद जाय! और हे कुलदेवता, दिनमणि दिवाकर, गोपाका अनुराग कुमारके रोम-रोम मे भिन जाय, पोर-पोरमे पैठे, वाणीमे पल-पल फूटे!

[जाती है]

दृश्य ३

[कपिलवस्तुमे सिद्धार्थका ग्रीष्म प्रासाद। परिणयके पश्चात्। गायन-वादनसे कमरा अभी भी गूँज रहा है यद्यपि स्वर-ताल थम गये हैं। कुमारका सकेत पा गायिकाएँ-नर्तकियाँ उठती हैं और चुप-चाप चली जाती हैं। कमरा सूना हो जाता है, केवल अनुरागभरा। अब वहाँ बस दो हैं—कुमार और गोपा। दोनो बाहर छतपर निकल आते हैं।]

सिद्धार्थ—गोपे!

गोपा—रमण!

सिद्धार्थ—कितना स्पृहणीय है शरद्!

गोपा—नितान्त मदिर!

सिद्धार्थ—आकाश कितना निर्मल है, गोपे, कितना निरभ्र, कितना सूना, सार्थक शून्य।

गोपा—पर सर्वथा सूना भी नही, रमण, रजतप्रतानकी भाँति मेघनण्ड जहाँ-तहाँ गतिमान है। पवन इन्हे अपने पखोपर तौलता बहता जा रहा है। अकेला कोई नही रहता, प्राण!

सिद्धार्थ—नही, प्रिये, अकेला कोई नही रहता—आकाशके साथ धरा है, जैसे पर्वतके साथ जलधारा, जैसे जलधाराके साथ चपल शफरी, हसमिथुन। हाँ, पर—

गोपा—'पर' क्या, सुमन?

सिद्धार्थ—पर क्या आकाश सूना नही है, प्रेयसि, घना सूना?

गोपा—चन्द्र कितना सुदर्शन है, प्रिय, अभिराम वलयमे वेष्टित बिम्ब दिगन्त-व्यापी चन्द्रिकाका आराध्य!

सिद्धार्थ—सही, गोपे, चन्द्र सुदर्शन है, वलयवेष्टित उसका बिम्ब भी अभिराम है, जैसे उसकी चन्द्रिकासे दिगन्त भी आलोकित है, आकर्षक, किन्तु—

गोपा—'किन्तु' क्या, रमण? विकल्प कैसा?

सिद्धार्थ—किन्तु, गोपे, गगन गम्भीर है, अनन्त गहरा, आधारहीन! चन्द्रधर, नक्षत्रधर, पर स्वय निराधार, गतिहीन, सूना!

गोपा—जिसकी चाँदनी चराचरको परसकर निहाल कर देती है, विमनको स्निग्ध, वह भला सूना कैसे, मनहर?

सिद्धार्थ—देखो, प्रिये, उन नक्षत्रोको देखो, उन दूर एकान्तमें झिलमिलाते तारोको, जैसे गगनके सूनेपनमे अवसन्न हो रहे है, अवसादसे विकल निरवलम्ब!

गोपा—ज्योतिष्मती रजनीका यह प्रभाव है, वरेण्य, शारदीय विभावरी-का। वरना, याद करो, कितने तारे, कितने नक्षत्र इस कौमुदीकी आभाके नीचे गतिमान है। सोचो, गगनगगाकी उन अनन्त नीहारिकाओको जिनके नीचेसे होकर मन्दाकिनीका धवल मार्ग चला

गया है। आलोडित जीवन जो ज्योतिकी चकाचौधसे मात्र कुण्ठित हो गया है।

सिद्धार्थ—[धीरे-धीरे सोचता-सा] जीवन-ज्योतिकी चकाचौधसे कुण्ठित। ठीक ही कहा, गोपे, जीवन ऐसा ही है, स्पन्दित, आलोडित, पर प्रकाशसे कुण्ठित, अज्ञानान्धकारसे आवृत, क्षणभगुर

गोपा—[कुछ सस्वर] जागो, जागो, प्रिय! अचेतनका खूँट न पकडो। देखो, इस नाचते निसर्गको, इस रूपमण्डिता धराको, कुसुम-निचयसे लदी वनस्थलीको, चाँदनीसे खिलखिलाती शैलमालाकी हरित श्यामल शाद्वल-मेखलाको देखो—

सिद्धार्थ—[सकुचाता हुआ] लज्जित हूँ, गोपे, शरद्का यह वैभव मैने अपने असमयके प्रलापसे दूषित कर दिया। क्षमा करना, मै इस वैभवके प्रति विमन नही हूँ। और तुम्हारा जीवनके प्रति उल्लास तो मुझे चिरन्तन प्रिय है। बोलो, मानिनि, निसर्गके प्रति, उसके रजित प्रसारके प्रति मेरा आदर है—

गोपा—[मुसकराती हुई] देखो, फिर, मेरे अभिनव सर्वस्व, देखो इस नदिता धराको, काशकुसुमोंसे सजी, पके शालिका पीत परिधान धारे इस शरद्की नववधूको।

सिद्धार्थ—देखता हूँ, प्रिये, अभिनव शृङ्गार किये मुग्धा धरित्रीको—

गोपा—और देखो हसोंकी पक्तिसे सनाथ रोहिणीकी रजत धाराको, मरालोसे कपित सरके कमलोको जो अपनी नालोपर मधुपकी नाई डोल रहे है। कुसुमभारसे झुके सप्तच्छदोसे श्यामल उन वनातोको देखो, नगरके उन उपवनोको जिन्हें मालतोकी लताओने अपने उजले फूलोसे उजागर कर दिया है।

सिद्धार्थ—देखता हूँ, गोपे, मरालगतिका रोहिणीकी रजतधाराको देखता हूँ।

तुम्हारी नासाकी मदिर सुरभिमें जाग्रत अभिनव पद्मोंको देखता हूँ, शरद्‌की समूची पुष्पराशिको देखता हूँ।

गोपा— बन्धूक और कोविदारको देखो, कुटज और नीपके कुसुमनिचयको, सुरभित शेफालिकाकी अमित राशिको।

सिद्धार्थ—रागारुण निसर्गकी मानस-मराली, रम्य है यह शरद्‌का उत्कर्ष, रम्य है यह मालतीसनाथ हिमालयका वनप्रान्तर, यह कुसुम-प्रवालोंसे लदी श्यामा लताओंसे ढका शैलभिन्न महाकान्तार।

गोपा—अरे उन काञ्चन कुड्मलोंको देखो, मेरे प्रबुद्ध प्रियतम, उन प्रफुल्ल नीलोत्पलोंको, उन नाचते अरविन्दोंको, उन मरकत मणिकी आभासे अविरल बहती वारिधाराओंको, उस सस्मितवदना चन्द्र-कान्तिको, उस मरीचिमालीकी अविराम बरसती किरणोंको—

सिद्धार्थ—बस, बस, माधुरी, मद गया इस मदिर भाव-सञ्चारसे। शरद्‌का वैभव जितना बाहर प्रकट है उससे कहीं प्रचुर तुम्हारे मानसमें निहित है। लक्ष्मी शशाङ्कको छोड़ तुम्हारे मुखाम्बुजमें जा बसी है, हँसोंका कलरव तुम्हारे मणिनूपुरोंमें बज चली है, बन्धूककी अरुण कान्ति तुम्हारे होठोंको लालायित कर रही है। मेरा प्रमदायित मानस विकल हो रहा है, मुग्ध, मोहायित, चलो!

[गोपाके कन्धेपर अपना हाथ रख देता है]

गोपा—[कन्धेपर रखे सिद्धार्थके हाथपर अपना हाथ रखती हँसती हुई] चलो, मेरे मानसके मधुर मराल! मेरे चिन्तनके नित्य काम्य! भावनाके सिद्धार्थ! चलो! [दोनों कमरेमें चले जाते हैं।]

दृश्य ४

[सिद्धार्थका वसन्त प्रासाद । प्रासादकी अटारीमे, वातायनके सामने बैठे सिद्धार्थ और गोपा। बाहर देखते हुए वार्तालाप-मे रत]

गोपा—धरापर पराग बरस रहा है, सौम्य, धरित्री अघा रही है, पोर-पोर खोले आनन्दविभोर है।

सिद्धार्थ—सौरभसे वातावरण महमह कर रहा है, प्रिये।

गोपा—आमकी मजरियाँ अपने कोष खोले सुरभि लुटा रही है। गन्धवाही पवन उस गन्धसे पागल डोल रहा है, मञ्जरियोपर मँडराते मधुकर मधुकरियोसे अनायास टकरा जाते है, बौराये चक्कर काट रहे है।

सिद्धार्थ—स्वय बौरे आमोने निश्चय चराचरको बौरा दिया है। उन कोयलोको तो देखो तनिक—

गोपा—[लजाती हुई, चुपकेसे देखकर] प्रणयका सम्भार है। ससारसे दोनो जैसे अलग है, अकेले।

[कोयलकी कूक कू ! कू !]

सिद्धार्थ—लो, कामने दुन्दुभी बजा दी।

गोपा—कितनी मधुर है कूक।

सिद्धार्थ—टेर रहा है, सङ्गिनीके समीप होते भी।

गोपा—कितना कषाय है कण्ठ उसका।

सिद्धार्थ—प्राय द्विधाभिन्न। मजरीका स्वाद कषाय होता है, कषाय-स्वादु। देखो, कोकिलाको कैसे अपनी खाई हुई मजरीका अश चुगा रहा है, चोच-से-चोच मिली है।

[गोपा लजा जाती है। सिद्धार्थ उसका झुका हुआ मस्तक

चिबुक पकड कर उठा देता है, गोपा अधखुली आँखों देखती है, कोकिल-कोकिलासे आँखें चुराती हुई।]

सिद्धार्थ—वनस्थलीमें माधव नाच रहा है। जानती हो प्रिये, वसन्त कामका सेनानी है ?

गोपा—जानती हूँ, नाथ, मधुनायकके दिये उपकरणोंसे ही तो पुष्पधन्वाके परिच्छेद बनते है—

सिद्धार्थ—हाँ, ईखसे धनुषका दण्ड, भौंरोसे उसकी डोरी, पंच पुष्पोंसे पंचवाण।

गोपा—[धीरेसे] वसन्त उसका सेनानी, कोकिल उसके वैतालिक, चारण।

सिद्धार्थ—मारकन्याएँ उसके प्रहारके अस्त्र।

गोपा—कितनी अभिराम भावुकता है, कितनी अभिमत कवि-कल्पना।

सिद्धार्थ—पर क्या यह मात्र कविकल्पना है ? जीवनका पर्याय नही ? उसका एकान्तिक सत्य नही ?

गोपा—एकान्तिक सत्य तो तुम जानो, मेरी उन्मद भावनाके एकान्तिक सर्वस्व। मैं तो मात्र तुम्हें जानती हूँ। तुम्हारे उस रसाकुल पिण्डको, रसराजके स्पर्शसे स्निग्ध, परागसे अभिषिक्त तुम्हे।

[सिद्धार्थ कुछ शिथिल हो जाता है।]

गोपा—क्यों, विमन कैसे हो चले, मधुमानस ?

सिद्धार्थ—नही, विमन कहाँ, गोपे ?

गोपा—क्यों नही, कान्ति जैसे सहसा मलिन पड गई है, चन्द्रबिम्बके सामनेसे जैसे मेघखण्ड निकल गया है। बात क्या है, स्वामिन् ?

सिद्धार्थ—बात कुछ नही, रानी। बस तनिक असावधान हो गया था। क्षमा करना, अब पूर्ववत् उत्सुक हूँ, तुम्हारी व्यंजनाके प्रति उन्मुख।

गोपा—नही, वाणी चिन्ताकुल है। प्रयत्न करके भी वदनको प्रफुल्ल नही

बना पाते, चेष्टाएँ विकृत हैं। बोलो, प्रिय, बात क्या है? मधुके झरते मकरन्दके बीच, बरसते अनुरागके बीच यह विराग कैसा?

सिद्धार्थ—सही है, गोपे, क्षमा करना। निःसन्देह अन्तर्मुख हो चला हूँ। मानस सहसा उद्विग्न हो उठा है। यह वनस्थलीमें नाचता माधव, यह निसर्ग वैभव, यह इन सबसे मूल्यवान, सबसे अभिराम, सबसे कमनीय तुम्हारी देवदुर्लभ काया, सब सहसा नेत्रोंसे परे हो गये। बिसरे निदानकी सहसा याद आ गई। लगा,

[गोपाके आँसू बहते जा रहे हैं]

यह मधु भी रित जायगा, जीवन मुरझा चलेगा, और साथ ही तुम्हारी यह अनुपम काया भी धीरे-धीरे पीली पड़ जायगी, इसका अभिनव वसन्त एक दिन

गोपा—[सिसकती हुई] क्या हुआ, प्राणेश्वर, यदि ऐसा हुआ तो? यह तो प्राणीका धर्म ही है, प्रकृतिका ही धर्म है, इससे रक्षा कहाँ? इसमें क्षोभ क्यों?

सिद्धार्थ—और तब एक दिन हमारा वह अनुपम नवजात, हमारी एकान्त ममताकी डोर राहुलपर भी कालका वही कुठाराघात होगा, इस क्षण भी होता जा रहा है। शिशुसे वह बाल होगा, बालसे किशोर, किशोरसे युवा, फिर प्रौढ़, वृद्ध और

गोपा—[सिसकती हुई] हाय! हाय!

सिद्धार्थ—हाय, आगे सोच नहीं पा रहा हूँ। पर क्या इस जीव धर्मसे छुटकारा नहीं है? इतना प्राणवान् गतिमान मानव क्या मात्र मिट्टी होकर रहेगा, जड़ धूल?

गोपा—मत, मत सोचो इस प्रकार, मेरी साधोंके राजा। जीवनको सोचो, मृत्युको भूल जाओ, भुला दो।

[नेपथ्यमें—शिशुकी आवाज़—ओ! ओ! उदर, अम्म।]

सुन लो उस छौनेकी आवाज। जीवन कितना जीव्य है, मेरे प्राण! फिर अभिमत जीवन, जैसा हमारा है।

[दासी प्राय साल भरके शिशुका हाथ पकडे कक्षमे प्रवेश करती है, स्वामी-स्वामिनीकी गभीर मुद्रा देख ठिठक जाती है। शिशु माँकी ओर उँगली उठाता उसे खींचता है।]

शिशु—वो वो—अम्म-तात! वो-वो!

गोपा—आने दो, शिशुको आने दो, दासी। लाओ उसे!

[सिद्धार्थ धीरे-धीरे सिर उठाता आते शिशुकी ओर देखता है]

गोपा—[गोदमे शिशुको लेती, छातीसे चिपटाती हुई] मेरे लाल! [दासी चली जाती है] मेरे प्राणोके प्राण! मेरे छौने! बच्चे! [सिद्धार्थका चेहरा फिर मलिन हो उठता है, प्रसन्न मुद्रा बनाये रखनेके बावजूद]

गोपा—देखो, मेरे नाथ! मेरे आराध्य, देखो इस अनुपम अजेय शिशुको, शचीके इस जयन्तको, मेरे प्राणोके इस मर्मको!

[शिशु रह-रहकर अम्म! तात! कहता और माँकी जांघपर हिलता जाता है। फिर माँ और पिताकी चेष्टाएँ देख विमन कुछ चुप-सा हो जाता है। सिद्धार्थ राहुलको निहारता है, फिर धीरे-धीरे माँसे चिपटते शिशुको अपनी गोदमे खींच लेता है।]

सिद्धार्थ—[भरी गीली आंखोको पोछता] देखता हू इसे, मेरी प्राण। देखता हूँ, इस एकान्त तनयको। और काँप जाता हूँ। क्या यह क्षणभगुर जीवन चिरजीवन नहीं हो सकता? क्या रूप-यौवन, स्वास्थ्य स्थायी नहीं हो सकते? जीवन क्या मृत्युका ही होकर रहेगा? पल-पल मिटता हुआ जीवन क्या अजर-अमर नहीं हो

सकता ? क्या उसका निदान कही नही ? क्या कही मृत्यु और दु खका निरोध नही ढूँढ पाऊँगा ?

[गोपा निरन्तर रोती जा रही है। राहुल विस्मित है। कभी मांको देखता है, कभी पिताको। फिर अम्म ! अम्म ! करता बरबस मांकी गोदमे चला जाता है।]

सिद्धार्थ— चिन्तित मै इसलिए हूँ, गोपे, आकुल इसी कारण हूँ कि किसी प्रकार जीवन-मरणका वह भेद पा लूं, कि तुम्हारी इस अभिराम कायाको मिटने न दूँ, इसे जीर्ण न होने दूँ, तुम्हारे इस अप्सरा-दुर्लभ आननपर एक भी चिन्ताकी रेखा, एक भी झुरी न आने दूँ। कि इस शिशुका यह शैशव, इसका अनागत यौवन दु:खसे, व्यथासे विकृत न हो उठे। और इसीलिए, गोपे, मुझे जाना होगा। इसी लिए कि तुम्हे सदा देख सकूँ, सदा पा सकूँ, कि राहुलको अमृतत्व ला सकूँ।

गोपा—[रोती हुई] नही, मेरे स्वामी, नही। नही चाहिए मुझे अजर-अमर जीवन, नही चाहिए मुझे शाश्वत यौवन, और न मेरे नयनके इन तारेको ··

[टूटकर रो पडती है। शिशु भी सहसा रो पडता है। परदा गिरता है।]

दृश्य ५

[सिद्धार्थ सम्यक् सम्बोधिकी खोजमे कपिलवस्तु छोड एक रात चले गये। कपिलवस्तुका राजपरिवार, शाक्य-समाज अवसादके वशीभूत हुआ। उसके कुछ महीनो बाद अपने शीतप्रासादमे अनु-राधासे वार्तालाप करती गोपा। कक्ष सूना है, विलासके सारे पदार्थ वहांसे हटा दिये गये हैं। केवल एक ओर बच्चेके खिलौने गजदन्तके आधारपर रखे हैं। बच्चा सो रहा है। गोपा पर्यंकपर

अधलेटी है, उसका वस्त्र आभाहीन है, मुख की कान्ति मलिन हो गई है, सूखी लटें एक ही वेणीमे गूंथी जाकर भी निकल कर इधर-उधर भटक पडी हैं। अनुराधा पर्यंकके पास ही भद्रपीठ पर बैठी है।]

गोपा—न जाने कहाँ गये नाथ, राधे, किधर गये।

अनु०—रोहिणी पार, श्रावस्तीकी ओर, मल्लोकी ओर।

गोपा—पैदल! नगे पाँव! उनके वे कोमल चरण!

अनु०—धीर धरो, गोपे, आयेगे सिद्धार्थ। स्वामी लौटेंगे।

गोपा—अब क्या लौटेंगे स्वामी, राधे! गया कभी लौटा है? गया कहा छदाने?

अनु०—हाँ, कहा उसने कि स्वामीने अपने भ्रमर श्याम कुञ्चित कुन्तल खड्गसे काट डाले, मूल्यवान उष्णीष और दुकूल उतार दिये, यतीके चीवर मांग पहन लिये और अश्व कथकको और उसे अनुग्रहसे देखते चले गये।

गोपा—नगे पाँव! जलती धरती, कोमल चरण! हाय स्वामी!

अनु०—जिसने जीवनको प्राणियोके हितचिन्तनमे स्वाहा कर दिया उसके नगे पाँव और कोमल चरणका क्या रोना सखि? फिर यदि उनकी बात करती ही हो तो यह न भूलो कि उनके कोमल गातकी कठोरता भी कुछ कम नही। शाक्यो-कोलियोमे कौन था जो उनके अगोकी कठोरताका साक्षी नही, जो उनसे लोहा ले सकता रहा हो?

गोपा—सही, राधे, गात कठोर था उनका, उसे शाक्यो-कोलियोंने देखा, हिया उनका उस गातसे भी कठोर था, यह मैंने देखा, तुमने, राहुलने देखा।

अनु०—नही, सखि ऐसा न कहो। उपालम्भ न दो।

गोपा—[उलाहनेके स्वरमे आंसू भरकर भारी स्वरमे] उपालम्भ न दूँ, राधे? देखती हो उस अकुरको, जिसे तातके प्यारकी आवश्यकता

थी, पिताकी निजताकी। उसे उन्होने क्या कहा? राहुल! विघ्न! कांटा!

अनु०—गोपे!

गोपा—कांटा था वह नवजात उनके लिए! उनकी राहका कांटा! कभी किसी पिताने अपने सद्योजातको इस प्रकार नही पुकारा। मेरे नवजातका यह स्वागत! [बच्चेके पालनेकी ओर दौड उसे चिमटा लेती है] मेरे अभागे राहुल! मेरे अकिञ्चन लाल! [बच्चेको छोड देती है, बच्चा ऑयँ! ऑयँ। करके करवट वदल सो जाता है। अनुराधा गोपाको सहारा देती लाकर फिर पूर्ववत् पलगपर बैठा देती है।]

अनु०—नही, सखि, स्वामीका निरादर न करो। ग्लानि बडी है, जानती, हूँ, पर उनकी प्रतिज्ञाकी परिधि उससे भी बडी है, उद्देश्यका आयाम कही वडा है उससे, यह न भूलो।

[गोपा चुपचाप रोती है]

फिर एक वात और है, गोपे?

[गोपा उत्सुक हो आँखें उठा सखीकी ओर देखती है।]

अनु०—स्वामी क्यो गये, तुमने स्वय एक दिन अनायास कह दिया था।

गोपा—क्यो गये, राधे? क्या कह दिया था मैंने?

अनु०—गये कि उस भेदको जान लें, उस उपायको खोज ले जिससे तुम्हारा यौवन अजर हो जाय, जिससे राहुलका वढता गात कभी छीजे नही, कभी व्याधियोका पजर न वने!

गोपा—आग लगे इस यौवनको, राधे, यमका पाम इस तनको वांध ले।

अनु०—पर वात तो यही थी, गोपे।

गोपा—[तनिक रुककर चिन्ताकी मुद्रामे] वात यह नही थी, सखि। वात वह विचारी है मैंने, दिन-दिन, रात-रात गुना है उसे।

हियाको मेकनेवाली बात होती वह, पर वही उस महान् अभियानकी पराजय भी होती। पर बात वह नही है, राने।

अनु०—समझी नही, सखि।

गोपा—वही तुम्हारी ही बात, उनकी प्रतिज्ञाकी परिधि बडी है, उनके उद्देश्यका आयाम बडा है।

अनु०—फिर ?

गोपा—वह मेरी बात नही, सखि। होनी भी नही चाहिए वह मेरी बात। वह तो जन-जनकी बात है। उनके हियेमे जो दीप जलता था उसकी लौ तो सबका अन्तर सेकनेके लिए थी, कुछ मेरे ही लिए नही। कातरनयना मृगीपर सधाने बाणका उतर जाना, बाण-विद्ध क्रौंचके जीवनके लिए इतना आग्रह, श्वपच-चाण्डालके लिए इतनी ममता, क्या सब मेरे ही लिए ? ना, स्वामीकी दृष्टि लोकदृष्टि थी, पारिवारिक दृष्टि थी ही नही, परिवारमे जन्मे ही नही थे, गार्हस्थ्यकी परिधिमे कभी वे बधे ही नही, गृहस्थ होकर भी।

अनु०—और इतनी ममता जो तुम्हारे पर थी, वह ?

गोपा—वह माया थी, सखि, मात्र छलना। सदासे उनका यही प्रयत्न था कि मेरे तारुण्यकी अवहेलना न हो, उसका सुख मुझे मिल जाय। और यह सब केवल मुझे इसी दिनके लिए तैयार करनेके प्रयत्नमे था। वे मेरे तारुण्यके आकर्षणमे कभी नही गिरे।

अनु०—फिर भी, क्या तुम्हे उनका आत्मनिग्रह स्वीकार नही है ?

गोपा—है, सखि। स्वीकार है मुझे उनका आत्मनिग्रह। उनकी प्राणिमात्र अनुकम्पा, चराचरपर अनुग्रह, दुखियोंके आर्तिनाशके उपाया चिन्तन मुझे सर्वथा स्वीकार है, केवल मै उसके लिए तैयार न थी।

अनु०—तैयार होती कैसे ? उनके कह देने मात्रसे तो नही। वैसे उन्होंने सकेत द्वारा कह देनेमे भी सकोच न किया। जानो, सखि, इस

प्रकारका दु ख, ऐसा वियोग-विरह झेल कर ही जाने तो साध्य हो वरना उसकी प्रतीक्षा तो असह्य हो उठे। आदमी चुक जाय पर प्रतीक्षाका सताप न चुके।

गोपा—मानती हूँ, राधे, स्वामीका अभियान इसी मात्र आचरणसे सम्पन्न हो सकता था। पर मोह, यह सर्वसोखी मोह! लगता है जैसे हिया फट जायगा। लगता है, जैसे स्वामी आयेंगे।

अनु०—आयेंगे स्वामी, गोपे, निश्चय आयेंगे, नि सन्देह। धीर धरो। महापुरुषकी अनुवर्तिनी हो, तुम्हारा चरित भी तदनुकूल ही होना चाहिए—महान्।

गोपा—धरूँगी धीर, राधे। अपने लिए, इस पुत्रक राहुलके लिए, असख्य जनवृन्दके लिए, जिससे हम सबका कल्याण हो। जगत्का पहले, हमारा पीछे, जिसके लिए उन्होने अभियान किया है।

अनु०—साहस, बहिन, साहस।

गोपा—साहस करूँगी, सखि, कि स्वामीका प्रयत्न फले!

अनु०—कि दण्डपाणि और शुद्धोदनका पौरुष सफल हो, कि कोलियो और शाक्योके इतिहास स्वर्णाक्षरोमे लिखे जायँ, कि सतीका यश पतिके दिगतवेधी यशकी छायामे आकाशमे व्याप्त हो जाय!

[बच्चा पालनेमे उठकर बैठ जाता है, बोलता है, 'अम्म!' दोनो उधर दौड पडती है। परदा गिरता है]

दृश्य ६

[कई वर्ष बाद सिद्धार्थ सम्यक् सबोधि प्राप्त कर बुद्ध हुए, तथागत। तथागत कपिलवस्तु पधारे, समूचे सघके साथ। गोपा प्रासादके अपने कमरेमे चुपचाप कुछ गुन रही है। राहुल बाहर दासीके साथ पट्टिकापर लिख रहा है।]

गोपा—[स्वगत] धीरे-धीरे हृदय ! साहस ! स्वामी नगरमें पधारे हैं। आज तुम्हारी परीक्षा है। साहस !

[दासीका प्रवेश]

दासी—देवि, राजा पधार रहे हैं। देवीका प्रसाद चाहते हैं।

गोपा—[तेजीसे उठती हुई] अभिवादन कह, गुणिके, आर्यकी सेवाके लिए उत्सुक हूँ।

[राजा शुद्धोदनका सावेग प्रवेश]

गोपा—अभिवादन, आर्य, गोपाका अभिवादन ! [मस्तक झुकाती है]

शु०—स्वस्ति बेटी, मनोरथ फले ! सुना तुमने ?

गोपा—सुना, आर्य ! सुना कि आर्यपुत्र नगरमें पधारे हैं। सुना कि पिताके नगरमें भिक्षाटन कर रहे हैं।

शु०—नहीं, कन्ये। पर मनमें ग्लानि न लाओ। अमनुजकर्मा महापुरुषोंके आचरण मनुजोंके आलोच्य नहीं। मैं सिद्धार्थका पिता था पर तथागत आज जगत्के पिता हैं।

[गोपा आश्चर्यकी चेष्टा करती है। विस्मयसे उनके नेत्र फैल जाते हैं।]

शु०—बेटी, जब सुना कि सुगत कपिलवस्तुके राजमार्गपर भिक्षा-पात्र लेकर निकल पड़े हैं तब विकल हो दौड़ा। सामने जाकर पूछा, यह क्या करते हो ? अपने ही पिताके राजमें, राजाके नगरमें भिक्षाटन ? जानती हो क्या उत्तर दिया ? सुगतका शान्त देवदुर्लभ मस्तक उठा, दयार्द्र नेत्रोंसे देखते हुए वे बोले—'राजन्, तुम राजाओंकी शृंखलामें जन्मे हो, राजा हो, मैं भिक्षुओंकी परम्परामें जन्मा हूँ, भिक्षु हूँ। मेरे भिक्षाटनमें राजाकी अवमानना कैसी ?' और बेटी, मेरा मस्तक सुगतके अभिवादनमें झुक गया !

गोपा—[पुलकित आंसू भरे नेत्रोसे देखती है] धन्य ! धन्य जनक ! धन्य जात !

शु०—धन्य भार्या !

गोपा—नही, आर्य, भार्या कहाँ ?

[आँखोसे आंसू चू पडते है]

शु०—क्षमा करना, देवि ! आकस्मिक मोहने असावधान कर दिया था। पर क्या सुगतको देखने न जाओगी ? देख ले, वेटी, सारा नगर राजमार्गपर उतर पडा है, अन्तर तृप्त हो जायगा।

गोपा—[शान्त गम्भीर सतप्त वाणीमे] आर्य, मै क्या जानूं सुगत, क्या जानूं तथागत ? मेरे तो वस आर्यपुत्र ! और आर्यपुत्र नही तो मेरा कौन ?

[गोपाके मस्तकपर हाथ रखते आँखोमे आँसू भरे शुद्धोदनका प्रस्थान]

गोपा—साहस ! साहस, हृदय ! दिन-दिन गिनते मास वीते है, मास गिनते वर्ष। और आज यह दिन आया है जव आर्यपुत्र इधर पधार रहे है। पर मै भला कौन हूँ उनकी ?

[दासीका वेगसे प्रवेश। पीछे-पीछे राहुल]

दासी—देवि, तथागत इधर ही आ रहे है। सथागारका गजस्तभ पार कर चुके है। नि सन्देह इधरसे ही होकर निकलेगे। द्वारपर चलें, दर्शन करे।

राहुल—अम्व, कौन आ रहा है, कौन ?

गोपा—[वैठे जाते हृदयका आवेग रोकते हुए द्वारकी ओर वढती है। राहुल उसके घांघरेको पकडता साथ-साथ सरक चलता है]

कौन आ रहा है, पुत्रक ? क्या वताऊँ, कौन ? चल देखले उसे जो आ रहा है। [फिर स्वगत] सावधान हृदय, दुर्वलता लक्षित

न होने देना ! उनके मार्गमे बाधा न डालना। एक आंसू न गिरे, वाणी सयत रहे।

[नेपथ्यमे तथागतकी जय ! सुगतकी जय ! सम्यक् सबुद्धकी जय ! आगे आगे त्रिचीवर पहने बुद्धका आगमन, पीछे मोगगलान और पीछे कुछ दूरपर जनता। गोपा चुपचाप द्वारपर खडी है, राहुल मां का अधोवस्त्र पकडे है। पीछे दास-दासियां खडी हैं।]

गोपा—[धडकते हृदयसे स्वगत] क्या करूं ? किस प्रकार अपनेको सम्हालूं ? कही उन्हे छू न दूं ! कही धीरज छूट न जाय, ढाढम टूट न जाय ! हाय क्या कहूं ? क्या बोलूं ? मुझसे क्या वे बोलेंगे ? हे मेरे पितृ और श्वसुर कुलके समग्र देवता, इस अवलाको बल दो, साहस दो, तुम्ही उसकी रक्षा करना, तुम्ही उसके एकमात्र साहाय्य हो ! [सम्हलकर खडी हो जाती है। बुद्ध और मोग्गलान राजमार्ग पारकर द्वारपर शान्त आ खडे होते हैं। जनता सडक पार ही खडी रहती है। गोपा हाथ जोड नतमस्तक होती है, राहुल भी मांको हाथ जोडता देख तथागतके हाथ जोडता है, माथा झुका देता है।]

राहुल—अम्ब, यह कौन है ?

गोपा—[अपलक बुद्धको निहारती] एं !

राहुल—कौन है, अम्ब यह ?

[गोपाका अन्तर बालकके प्रश्नसे ग्लानिसे भर जाता है। ग्लानिसे शक्ति आती है, उत्तर देती है—]

गोपा—भाग्यसे पूछ, जात, अपने भाग्यसे पूछ !

[बुद्ध नेत्र नीचे किये सुनते हे और चुपचाप भिक्षापात्र देहलीमे गोपाके सामने बढा देते हैं।]

राहुल—तू चिढ गई, अम्ब ? कहती थी न, तात आयेंगे। राजा-दादा कहते थे, तात आयेंगे, ऐसे ही कपडे पहने !

गोपा—आर्य ! भगवन् ! कैसे पुकारूँ, नाथ ?

मोग्गलान—भिक्षा, भद्रे, भिक्षा ! तथागत गृहस्थ नही, भद्रे !

गोपा—[घबडाई हुई भी] भिक्षा, भन्ते ? अपने ही घर भिक्षा ?

मोग्गलान—तथागतका अपना कोई घर नही, गेहिनि, सुगत अनागारिक हैं।

[बुद्धका हाथ भिक्षापात्रपर दृढतर हो जाता है, स्थिर]

गोपा—[सहसा साहस बटोरकर] सुगत अनागारिक है, भन्ते ? हाँ, सुगत अनागारिक है। [ग्लानि और क्षोभभरी वाणीमे] गेहिनी तो बस मै ही हूँ ! जीवन मात्र मेरा अमर है, गृहपति विरहित इस गृहिणीका, निश्चय !

मोग्ग०—शीघ्र, गेहिनी, शीघ्र ! यदि तथागत लौटे तो अनाहार रह जायँगे !

गोपा—[घबडाकर] नही, भन्ते, तथागतको लौटना न होगा। [फिर बुद्धकी ओर झुककर] भगवन्, बडी उत्कण्ठासे प्रतीक्षा कर रही थी। आज आये। और जो आये तो इस वेशमे, त्रिचीवर पहने, भीख माँगने। भगवान्को भीख देनेका मुझमे सामर्थ्य कहाँ ? पर दूँगी भीख। और दूँगी अपना वह सर्वस्व जिसका मोल धरा-पर नही। [राहुलको बगलसे खींच दोनो हाथोमे उठाती हुई] यह है भिक्षा, भगवन् ! लो इसे ? मेरे इस अवशिष्ट सर्वस्व-को। जन्मके इस राहुलको !

[बुद्ध भिक्षापात्र मोग्गलानको थमा अपने दोनो हाथ बढा चुपचाप राहुलको गोपाके हाथोसे ले लेते हैं। गोपाका सचित साहस टूट जाता है। ग्लानि व्यग्यमे बदल जाती है। उसके मुँहकी मुद्रा बिगड जाती है। राहुलकी ओर देखती कहती है]

गोपा—[तीव्र स्वरसे] राहुल, पितासे अपनी दाय माँग, अपना पितृत्व !

बुद्ध—मोग्गलान, राहुलको प्रव्रज्या दो !

मोग्गलान—[मस्तक झुकाता हुआ] धन्य तथागत ! अनागारिक भिक्षुके पास सिवा प्रव्रज्याके दूसरी दाय कैसी ?

जनता—जय ! तथागतकी जय ! राहुल माताकी जय ।

[तथागत और मोग्गलानके साथ राहुलका धीरे-धीरे प्रस्थान । नागरिकोंकी जय-जयकार ।]

गोपा—[अधरमे देखती हुई] हाय ! यह क्या कर बैठी ? अपना अन्तिम अवलम्ब भी दे बैठी ? अभागे हृदय !

[दास-दासियोका बिलखना । गोपाको सहारा देकर भीतर ले चलना । शुद्धोदनका सहसा प्रवेश ।]

शु०—यह क्या, बेटी ? यह क्या सुनता हूँ ? क्या राहुलको सबको दे डाला ?

गोपा—देव ! पिता ! देव !

शु०—सिद्धार्थको खो चुका था, नन्द भी हाथसे निकल गया था । अब बुढापेकी लकडी यही राहुल बचा था, सो उसे भी नियतिने हर लिया !

गोपा—सब छूट गये, आर्यपुत्र छूट गये, पुत्र छूट गया, शेष बच रही अकेली मैं ! प्रारब्ध ! दैव !

[बेहोश हो गिरने लगती है । सब दौडते हैं । शुद्धोदन सहारा देते हैं । परदा गिरता है ।]

●

लेखक

जन्म—अक्तूबर १९१० ।

कार्य—भूतपूर्व सम्पादक, काशी विश्व-विद्यालयकी शोध-पत्रिका, अध्यक्ष, पुरातत्त्व-विभाग प्रयाग सग्रहालय, लखनऊ, प्राध्यापक, बिडला कालेज, पिलानी, सयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोपके अनेक विश्वविद्यालयोके विज़िटिंग प्रोफेसर, यूरोप, एशिया, अफ्रीका आदिके पर्यटक, भूतपूर्व डाइरेक्टर इन्स्टिट्यूट आफ एशियन स्टडीज, हैदराबाद।

सम्पादक—हिन्दी विश्वकोश, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।